विवेकशिखा

श्री रामकृष्ण-विवेकानन्द भाव-धारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष —१६ | मार्च—१९९७ | अंक — ३

रामकृष्ण निलयम्, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार)

विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

१५५. श्री विजय कुमार मल्लिक—मुजफ्फरपुर
१५६. श्रीमती गिरिजा देवी—बखरिया (बिहार)
१५७. श्री अशोक कौशिक-मालवीय नगर, (नई दिल्ली)
१५८. रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ—देवघर (बिहार)
१५९. श्री रामकृष्ण साधना कुटीर, खण्डवा (म० प्र०)
१६०. श्रीमती आभा रानाडे, अहमदाबाद (म० प्र०)
१६१. श्री डी० एन० थानवी, जोधपुर (राजस्थान)
१६२. श्री सोहन लाल यादव, नाहर कटिया (आठ)
१६३ डा० (श्रीमती) रेखा अग्रवाल, शाहजहाँपुर (उ प्र.)
१६४. डॉ० (श्रीमती) सुनीला मल्लिक—नई दिल्ली
१६५. श्रीरामकृष्ण संस्कृतिपीठ, कामठी (नागपुर)
१६६. कुमारी जसवीर कौर आहूजा, पटियाला, पंजाब
१६७. श्रीमती मंजुला बोर्दिया, उदयपुर (राजस्थान)
१६८, श्रीमती सुदेश, अम्बाला शहर (हरयाणा)
१६९. डॉ० अजय खन्ना (बरेली उ० प्र०)
१७०. श्री एम० टी पुराणिक—नागपुर
१७१. श्री धन्नालाल अमृतलाल सोलंकी, कलवानी
१७२. डॉ० कमलाकांत, बड़ोदा (गुजरात)
१७३. डॉ० विनया पेण्डसे, उदयपुर (राजस्थान)
१७४. सन्तोष वोनी, रामवन (जम्मू एवं कश्मीर)
१७५. श्री राजोभाई बी० पटेल, सूरत (गुजरात)
१७६. श्री प्रकाश देवपुरा—उदयपुर (राजस्थान)
१७७. श्री एस० के० मुन्दरा, जामनगर (गुजरात)
१७८. डॉ० मोहन बन्सल, आनन्द (गुजरात)
१७९. अडकिया कन्सलटेन्ट्स, प्रालि० मुम्बई
१८०. मुश्री एस० पी० त्रिवेदी—रोजकोट (गुजरात)
१८१. अद्वैत आश्रम, मायावती—(उ० प्र०)
१८२. श्री शत्रुघ्न शर्मा, फतेहाबाद—(बिहार)
१८३. रामकृष्ण मिशन, शिलांग—(मेघालय)
१८४. श्री त्रिभुवन महतो, रांची—(बिहार)

इस अंक में

		पृष्ठ
१. श्रीरामकृष्ण देव ने कहा है		१
२. श्रीरामकृष्ण - महिमा - स्तोत्रम्	स्वामी गर्गानन्द	२
३. एक पूर्ण कुम्भ का अवतरण और प्रयोजन	(सम्पादकीय सम्बोधन)	३
४. श्रीरामकृष्ण और धर्म समन्वय	श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्द	११
५. श्रीरामकृष्ण, धर्म और साम्प्रदायिकता	स्वामी निखिलेश्वरानन्द	१७
६. श्रीरामकृष्ण दोहावली (कविता)	डॉ० केदारनाथ लाभ	२०
७. ठाकुर ! मुझे भी यह कहिए	श्रीमती सुदेश	२१
८. स्वामी विवेकानन्द की स्मृतियाँ (३)	स्वामी सदाशिवानन्द	२३
९. विवेक चुडामणि	स्वामी वेदान्तानन्द	२७
१०. प्रेरक प्रसंग		

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत
उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किये बिना विश्राम मत लो।

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—१६ मार्च—१९९७ अंक-३

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

सम्पादक :
डॉ० केदारनाथ लाभ
सहायक सम्पादक :
शिशिर कुमार मल्लिक

सम्पादकीय कार्यालय :
विवेक शिखा
रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर
छपरा—८४१३०१
(बिहार)
फोन : ०६१५२-२२६३९

सहयोग राशि :

आजीवन सदस्य—	५०० रु०
वार्षिक—	४० रु०
रजिस्टर्ड डाक से—	५५ रु०
एक प्रति—	४ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग-राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

योगी दो प्रकार के होते हैं—गुप्त योगी और व्यक्त योगी। जो गुप्त योगी होते हैं, वे गुप्त रूप से साधन-भजन किया करते हैं, लोगों को बिल्कुल पता नहीं चलने देते। और जो व्यक्त योगी होते हैं, वे योगदण्ड आदि बाह्य चिह्न धारण करते हुए लोगों के साथ आध्यात्मिक विषयों की चर्चा किया करते हैं।

(२)

दूध में अगर उसका दुगुना पानी मिला हुआ हो तो उसकी खीर बनाने में बहुत समय और अत्यधिक श्रम लगता है। विषयी लोगों के मन में भी मलिन विषय-वासना और कुविचारों की अत्यधिक मिलावट होने के कारण उसे शुद्ध और पवित्र बनाने के लिए दीर्घ समय तथा कठिन परिश्रम करना पड़ता है।

(३)

जो घोर विषयासक्त जीव होता है, वह विष्ठा के कीट की तरह होता है। यह कीट सदा विष्ठा में ही रहता है, वहीं मरता है, विष्ठा के अलावा वह और कुछ भी नहीं जानता। जिसकी विषयासक्ति इतनी तीव्र नहीं, वह जीव मानो मक्खी की तरह होता है। मक्खी कभी विष्ठा पर तो कभी मिठाई पर बैठती है। मुक्त जीव मधुमक्खी की तरह होता है। मधुमक्खी सदा मधु का ही स्वाद लेती है; अन्य वस्तु का नहीं।

(४)

जब तक वासना का लेशमात्र भी रहे तब तक ईश्वर-दर्शन नहीं होते। इसलिए सामान्य वासनाओं को तृप्त कर लो और बड़ी-बड़ी वासनाओं को विवेक-विचारपूर्वक त्याग दो।

श्रीरामकृष्ण-महिमा-स्तोत्रम्

—स्वामी गर्गानन्द

हे दीनबन्धो करुणावतार
जयोऽस्तु ते वै कलिपापनाशिन् ।
प्रेमाब्धिपूर्ण प्रणते प्रसन्न
प्रभो नमस्ते सततं नमस्ते ॥१॥

ज्ञानञ्च भक्तिं सुमतिञ्च शान्ति
करोषि दानं शरणं पदाब्जे ।
हे दुःखहारिन् हृदये निवासिन्
प्रभो नमस्ते सततं नमस्ते ॥२॥

स्वमुक्तये जीवहिताय चैवं
कुर्वन्ति ये वै तव कर्म भक्त्या ।
सिद्धिं लभन्ते कृपया ध्रुवं ते
प्रभो नमस्ते सततं समस्ते ॥३॥

असंख्य—जन्मार्जित—कर्महेतु—
मायान्धकारो भवति प्रणष्टः ।
तवाङ्गदीप्त्या हृदि दिव्यदृष्ट्या
प्रभो नमस्ते सततं नमस्ते ॥४॥

योगासीनं चिदानन्दं सहास्य-वदनं स्थिरम् :
भक्ताश्रयञ्च भक्तेष्टं वन्दे श्रीभक्तवत्सलम् ॥५॥

नमः श्रीरामकृष्णाय श्रेष्ठाय परमात्मने
अनन्त महिमासिन्धु-सारदापतये नमः ॥६॥

सम्पादकीय सम्बोधन

एक पूर्ण कुम्भ का अवतरण और प्रयोजन

मेरे आत्मस्वरूप मित्रो,

महाभारत के आदि पर्व और श्री मद्भागवत के अष्टम स्कन्ध में समुद्र मंथन के द्वारा अमृत कलश प्राप्ति की कथा का मोहक वर्णन हुआ है। संक्षेप में कथा इस प्रकार है। मेरु पर्वत की एक रत्न खचित चोटी पर एकत्र हो देवताओं ने अमृत प्राप्ति के लिए निर्णय किया कि देवता और असुर मिलकर समुद्र-मंथन करें। इस मन्थन के फलस्वरूप अमृत की प्राप्ति होगी। अतएव, देवता और असुरों ने मन्दराचल की मथानी और वासुकि नाग की डोरी बनाकर समुद्र मंथन प्रारम्भ किया। इस मंथन से अगणित किरणों वाला शीतल प्रकाश से युक्त चन्द्रमा प्रकट हुआ। फिर भगवती लक्ष्मी और सुरा देवी निकलीं। तदुपरांत उच्चैःश्रवा घोड़ा, कौस्तुभ मणि, कल्पवृक्ष और कामधेनु की प्राप्ति हुई। लक्ष्मी, सुरा, चन्द्रमा उच्चैःश्रवा—ये सब आकाश मार्ग से देवताओं के लोक में चले गये। और फिर एक अलौकिक पुरुष प्रकट हुआ। उसके हाथों में अमृत से भरा कलश था—

अमृतापूर्णकलशं बीभ्रद बलयभूषितः।
स वै भगवतः साक्षाद्विष्णोरंशांश सम्भवः॥

(श्रीमद्भागवत ८।८।३४)

अर्थात् "उसके हाथों में कंगन और अमृत से भरा कलश था। वह साक्षात् विष्णु भगवान के अंशांश अवतार थे।' ये ही आयुर्वेद के प्रवर्तक धन्वतरि के नाम से प्रसिद्ध हुए। इस पीयूष कलश अर्थात् अमृत कुम्भ को देखकर उसे प्राप्त करने के लिए देवताओं और असुरों में संग्राम छिड़ गया। इसी समुद्र मन्थन से ऐरावत हाथी और कालकूट भी निकले और लोक कल्याण के लिए इसी हलाहल का पान कर शिव "नीलकंठ" के नाम से विभूषित हुए :

अमृत कुम्भ : एक प्रतीक

'समुद्र मंथन से जो अमृत निकला वह हमारे लिए आज किस काम का है ? यह प्रश्न हो सकता है। आधुनिक वैज्ञानिक युग का मानव अनन्त समस्याओं के द्वारा घिरा है। उसे अमृत कुम्भ नहीं, हलाहल ही हाथ लगा हो जैसे ! नाभिकीय युद्ध की संभावनाएँ, प्रक्षेपास्त्रों की भरमार, मानसिक तनाव और त्रासदी, मादक द्रव्यों, अपराध वृत्तियों और मुक्त यौनाचारों के साथ आर्थिक अभाव और सामाजिक बंधन—ये ही कुछ तो मिले हैं आज के मानव को। हम आज आसुरी सम्पदा के स्वामी हो गये, दैवी विभूतियों के नहीं। किन्तु ध्यान देने पर लगता है कि अमृत कुम्भ एक प्रतीक है।

अमृत है हमारा मूल स्वरूप, हमारी नित्य चैतन्य आनन्दमय सत्ता, हमारी सनातन अखण्ड दिव्यता। यह दूध में घृत की भाँति सब में सर्वत्र व्याप्त है। इसे मन की मथानी से निरन्तर मथकर प्राप्त कर लेना चाहिए।

"घृतमिव पयसि निगूढम् भूते-भूते वसति विज्ञानम् मनसा मन्थन-भूतेन ।
सततं मन्थयितव्यम् मनसा मन्थान भूतेन ॥
(अमृत विन्दु उप० २०)

पुनः आनन्द स्वरूप अविनाशी परब्रह्म को भी अमृत कहा गया है, मुण्डकोपनिषद में इसका भव्य—मनोरम उल्लेख है ।

मनोमय प्राण शरीरनेता प्रतिष्ठितोऽन्ने हृदयं सन्निधाय ।
तद्विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीरा आनन्दरूपममृतंयद्विभाति ॥
(मुण्डक २।२।७)

अर्थात् परब्रहम परमात्मा सब के प्राण और शरीर का नेता है, मन में व्याप्त होने के कारण मनोमय है । वही हृदय कमल का आश्रय लेकर अन्नमय स्थूल शरीर में प्रतिष्ठित है । जो आनन्द स्वरूप अमृतस्वरूप अविनाशी परब्रहम सर्वत्र प्रकाशित है, बुद्धिमान मनुष्य विज्ञान के द्वारा उसको भली भाँति प्रत्यक्ष कर लेते हैं ।

इस अमृत को प्राप्त करने के लिए ही ऋषि बार-बार हमारा आह्वान करते हैं—

यस्मिन्द्यौः पृथिवी चान्तरिक्षमोतं मनः सह प्राणैश्च सर्वैः ।
तमेवैकं जानथ आत्मानमन्या वाचो विमुंचथामृतस्यैष सेतुः ।
(मुण्डक २।२।५)

अर्थात् जिसमें स्वर्ग, पृथ्वी, अन्तरिक्ष तथा समस्त प्राणों के साथ मन गुथा हुआ है, उसी एक सबके आत्मस्वरूप परमात्मा को जानो, दूसरी सब बातों—ग्राम्यचर्चाओं—को छोड़ दो । वे सब तुम्हारे साधन में विघ्न हैं, अतः उनसे विरक्त होकर साधन में तत्पर हो जाओ । यही अमृत का सेतु है यानी संसार समुद्र से पार होकर अमृत स्वरूप परमात्मा को प्राप्त करने के लिए पुल के समान है ।

तात्पर्य यह है कि यह संसार एक विराट समुद्र है । परमात्मा रूपी अमृत कलश इसमें ही निहित है । इसे मन की मथानी से मथकर निकाल लेना ही हमारा कर्तव्य है । जब तक इस अमृत घट को प्राप्त नहीं कर लेते, हमारे क्लेशों, तापों और भोगैपणाओं का अन्त नहीं ।

वर्तमान तनावग्रस्त शंकाकुल, संत्राय-भय युक्त, भोगोन्मुख मानव के लिए एक ही मुक्ति का मार्ग है, एक ही अमृत-सेतु है—उस अमृत से भरे कलश को—पूर्ण कुम्भ को—प्राप्त कर लेना । चाहे इसके लिए कितनी ही साधनाएँ, कितने ही तप, कितनी ही चेष्टाएं क्यों न करनी पड़ें ।

अमृत का जो पूर्णकुम्भ संसास-सागर में है, वही हमारे चित्-समुद्र में भी है । जो बाह्य जगत में है, वही अन्तर्जगत् में भी है, जो बाह्य प्रकृति में है वही अन्तःप्रकृति में भी है । हम अन्तर्साधना के द्वारा, एकाग्रचित्तता के द्वारा, विवेक बुद्धि के द्वारा अपने चित्-सिन्धु में निहित अमृत कुम्भ का उद्घाटन कर आनन्द के आलोक-लोक में स्वयं को सदा के लिए प्रतिष्ठित कर ले सकते हैं ।

श्रीरामकृष्ण : एक पूर्ण कुम्भ

वर्तमान युग में, आज से प्रायः १६१ वर्ष पूर्व श्री रामकृष्ण के रूप में एक पूर्ण कुम्भ का, एक पूर्ण अमृत कलश का अवतरण हुआ था—अखिल मानवता के मंगल के लिए, लोक शोक को दूर कर उन्हें अखंड आनन्द के कैलाश पर प्रतिष्ठित करने के लिए, जीवत्व को शिवत्व प्राप्त कराने के लिए तथा समस्त धर्मों में निहित एक ही चिरन्तन सत्य की प्रत्यक्षानुभूति कराने के लिए।

स्वामी विवेकानन्द ने उनका स्तवन करते हुए उन्हें शक्ति-समुद्र से उठी हुई महान तरंग के स्वरूप, प्रेम की लीला दिखाने वाले तथा संशय-राक्षस के नाश के लिए महा अस्त्र के रूप में स्मरण करते हुए उन्हें भव-वैद्य कहा है।

शक्ति समुद्र समुत्थ तरंगं दर्शित प्रेम विजृम्भितरंगम्।
संशयराक्षसनाशमहास्त्रं यामि गुरुं शरणं भव वैद्यम्॥

अर्थात् जो महाशक्ति रूपी समुद्र से उत्थित तरंगस्वरूप हैं, जिन्होंने प्रेम की असीम लीलाएँ दिखायी हैं, जो सन्देह रूपी राक्षस के विनाश के लिए महाअस्त्र स्वरूप हैं, उन संसार-रोग के चिकित्सक गुरु की शरण में मैं जाता हूँ।"

श्री रामकृष्ण ने नर-देह धारण कर अथक साधनाओं के द्वारा अपने परमात्म रूप का, अपने सच्चिदानन्द घनस्वरूप का, अपने भीतर निहित पूर्ण अमृत कुम्भ का उद्घाटन किया था। और जो भी अपने में निहित अमृत कुम्भ का उद्घाटन कर लेता है वह स्वयं अमृत कुम्भ हो जाता है। परमात्मा हो जाता है। इसी से गोस्वामी तुलसीदास कहते हैं—"जानत तुम्हहि तुम्हहि होइ जाई।,'

पूर्ण कुम्भ के अभिज्ञान की कठिनता

श्रीरामकृष्ण एक पूर्ण अमृत कुम्भ थे, अर्थात् स्वयं अवतार थे, इसे यद्यपि देश विदेश के सुधीजन स्वीकार करने लगे हैं, तथापि सामान्य जन को इसे कबूलने में अभी कठिनाई होती है और वे उन्हें एक महापुरुष मात्र मानने को तैयार होते हैं। इसके कारण भी हैं।

प्रथम तो अवतार को पहचानना ही कठिन होता है। स्वयं श्रीरामकृष्ण ने कहा है कि नर लीला में विश्वास करना बड़ा कठिन है। भगवान मनुष्य की भाँति चलते फिरते हैं, खाते-पीते हैं, उनको जन्म मृत्यु, रोग-शोक होते हैं, यह सब देखकर कौन सोचेगा कि वे अवतार हैं? क्योंकि जिसे मनुष्य की भाँति देखते हैं उसे ही ईश्वर कहने की अपेक्षा एक रोड़े पत्थर को ईश्वर कहना सहज है। पत्थर के टुकड़े में तो कोई परिवर्तन नहीं होता; वह जैसा है वैसा ही रहेगा। उसका सम्मान या अपमान करें, उसमें कोई फर्क नहीं पड़ता। वह जस का तस रहेगा। किन्तु अवतार के साथ ऐसी बात नहीं है। उसका जन्म मरण होता है, बुढ़ापा और रोग होते हैं। उनका जीवन व्यावहारिक होता है, फिर ऐसे नर देह धारी को ईश्वर या अवतार कैसे कहा जाय?

फिर अवतार कितने ही हो गये हैं, यदि श्रीरामकृष्ण को हम अवतार मानें भी तो अवतारों की संख्या में एक की ओर तो वृद्धि हो जायेगी किन्तु इससे हमारी स्थिति में तो कोई अन्तर नहीं आयेगा। फिर रामकृष्ण को अवतार मानने का प्रयोजन ही क्या है?

वस्तुतः झूठे अवतारों से बचने की जरूरत भी है। ईसा मसीह कहा करते थे 'Beware of false prophets'—नकली मसीहाओं से सावधान रहो। बात यह है कि श्रेष्ठ साधक हुए विना अवतार को पहचाना ही नहीं जा सकता है। जब श्रीरामचन्द्र का अवतार हुआ था तब मात्र बारह ऋषि उन्हें अवतार के रूप में पहचानते थे, बाकी उन्हें दशरथ पुत्र के रूप में ही जानते थे। श्रीकृष्ण को भी उनके जीवन काल में अवतार के रूप में बहुत कम लोग जानते थे। इसी से व्यंग्य में उन्होंने कहा—

"अवजानन्ति मां मूढ़ा मानुषी तनुमाश्रितम्
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम् ॥

(गीता ९।९९)

अर्थात् मोहग्रस्त व्यक्ति मुझे मानव शरीरधारी कहकर मेरी अवमानना करते हैं। वे मेरे परम तत्व वाले रूप को नहीं जानते। इसी से श्रीरामकृष्ण कहा करते थे—"हाथी के दाँत दो प्रकार के होते हैं—बाहर दिखाने के लिए एक प्रकार के और भीतर खाने के लिए दूसरे प्रकार के। इसी तरह श्रीकृष्ण जैसे अवतार पुरुषों में दो प्रकार के भाव होते हैं। बाहर तो वे साधारण मनुष्य की तरह दिखाई देते है। पर भीतर से वे समस्त कर्म-कोलाहल से परे परम शान्त अवस्था में प्रतिष्ठित रहते हैं।" अतः श्रीरामकृष्ण भले ही बाहर से हमारी तरह देहधारी हैं किन्तु भीतर से वे एक पूर्ण कुम्भ, पूर्ण ज्योतिर्मय आनन्दधन रूप में ही स्थित हैं। हम साधारण जन उन्हें पहचान नहीं पाते।

प्रश्न यह है कि यदि साधारण जन अवतार को पहचान ही नहीं पाते तो फिर उनके लिए अवतार का प्रयोजन क्या है? इसका उत्तर भी श्रीरामकृष्ण के शब्दों में इस प्रकार दिया जा सकता है—जैसे कोई राजा छद्म वेश धारण कर अपने राज्य में घूमने आता है। यदि वह राजवेश में आवे तो राजा को देख साधारण जन सम्भ्रम से दूर हट जायेंगे। प्रजा के साथ राजा का निकट सम्पर्क, आत्मीयता का सम्बन्ध नहीं हो सकेगा। इसी से राजा राजऐश्वर्य को छोड़कर साधारण मनुष्य की वेशभूषा धारण कर आता है ताकि लोग उनसे दूर न हो जायँ। वह आता है जन साधारण के हृदय में प्रवेश करने। इसी प्रकार अवतार अपने ऐश्वर्य का त्याग कर नर देह में लोक कल्याण के लिए आते हैं। जिनके लिए ब्रह्म अवतार होकर आते हैं उनके लिए ही वे उनके जैसा ही रूप भी धारण कर लेते हैं।

श्रीमद्भागवत में एक दृष्टांत के द्वारा इसे समझाया गया है। सरोवर के जल में चन्द्रमा प्रतिबिम्बित होता है। चन्द्रमा के उस प्रतिबिम्ब के साथ मछलियाँ क्रीड़ा करती हैं। उन्हें लगता है कि चन्द्रमा भी मानो उन्हीं की भाँति एक मछली है। इसी प्रकार जब भगवान हमलोगों के बीच शरीर धारण कर आते हैं तब हम लोग उन्हें अपने ही समान मानकर उनके साथ क्रीड़ा करते हैं। धीरे-धीरे वे हमलोगों को उनन्त करते हैं, पवित्र, उदार और निर्मल कर देते हैं। हमारे चित को शुद्ध कर देते हैं। धीरे-धीरे प्रभु का ऐश्वर्य हम लोगों के लिए स्वाभाविक हो जाता है। साधारण रूप में आये भगवान धीरे-धीरे अपनी असाधरणता हमारे समक्ष प्रकट करते हैं। इस प्रकार वे हमें भी सीमा से असीम की ओर, खंडत्व से अखंडत्व की ओर और अपूर्णता से पूर्णता की ओर ले जाकर हमारे भीतर निहित दिव्यता का उद्घाटन कर हमें धन्यता प्रदान प्रदान करते हैं।

श्रीरामकृष्ण ने हमलोगों के अभ्युत्थान के लिए ही अपने ऐश्वर्य का त्याग कर नर देह को

वरण किया था। वे आये थे अपने जीवन और सन्देशों के द्वारा हमारे जीवन को नये आलोक से आलोकित करने, नयी प्रेरणा से प्रेरित करने और नयी दिशा की ओर महाभिनिष्क्रमण करने की भावना उत्पन्न करने।

श्रीरामकृष्ण : अवतारत्व का प्रयोजन

श्रीरामकृष्ण युगावतार थे। नवयुग को वे नयी चेतना प्रदान करने आये थे। प्रत्येक व्यक्ति का उद्देश्य है ईश्वर-लाभ करना, सभी धर्मों में एक ही सत्य की अभिव्यक्ति हुई है, जीव की शिव ज्ञान से सेवा करना और ईश्वर का स्मरण करते हुए संसार के कर्म करना—ये कुछ ऐसे विन्दु हैं जिन पर श्रीरामकृष्ण ने नये सिरे से प्रकाश डाला है।

१. ईश्वरलाभ ही जीवन का उद्देश्य

श्रीरामकृष्ण ने बचपन में ही उस विद्याध्ययन का बहिष्कार किया था जिससे आटा-दाल तो मिल सकते हैं पर भगवान लाभ नहीं हो सकता। उन्होंने स्वयं पहले ईश्वर की प्राप्ति की फिर अन्य कर्म। इसलिए उनकी धारणा थी कि इस दुर्लभ मनुष्य जन्म को पाकर जो जीवन में ईश्वर लाभ के लिए चेष्टा नहीं करता, उसका जन्म लेना ही व्यर्थ है। वे कहा करते थे—"मुसाफिर को नये शहर में पहुँचकर पहले रात बिताने के लिए सुरक्षित डेरे का बन्दोवस्त कर लेना चाहिए। डेरे में अपना समान रखकर वह निश्चिन्त होकर शहर देखते हुए घूम सकता है। परन्तु यदि रहने का बन्दोवस्त न हो तो रात के समय अन्धेरे में विश्राम के लिए जगह खोजने में उसे बहुत तकलीफ उठानी पड़ती है। उसी प्रकार इस संसार रूपी विदेश में आकर मनुष्य को पहले ईश्वर रूपी चिर विश्रामधाम को प्राप्त कर लेना चाहिए, फिर वह निर्भय होकर अपने नित्य कर्त्तव्यों को करते हुए संसार में भ्रमण कर सकता है। किन्तु यदि ऐसा न हो तो जब मृत्यु की घोर अन्धकारपूर्ण भयंकर रात्रि आएगी, तब उसे अत्यन्त क्लेश और दुःख भोगना पड़ेगा।"

आज का मानव भोग-विलास, विषय-वासना, हिंसा, स्वार्थ आदि के चक्रवात में फंसकर छटपटा रहा हैं। कारण है, वह जीवन जीने की कला नहीं जानता। यह कला है पहले ईश्वर लाभ कर लेना फिर सांसारिक कार्यों का निष्पादन करना। जब हम ईश्वरोन्मुख होते हैं, तब जगत् का स्वरूप हमारे लिए बदल जाता है। यह भोग भूमि न होकर योग भूमि हो जाता है। जब हम राम में आश्रित होते हैं, तब काम का विकार मिट जाता है। तब संसार का कुरुक्षेत्र धर्मक्षेत्र में बदल जाता है। जो शिव को उपलब्ध कर लेता है उसे हर जीव शिव ही दिखाई पड़ता है। फिर उसका हर कर्म सृष्टि को सुन्दर बनाने की साधना हो जाता है, उसके लिए जगत् निष्काम कर्म का यज्ञ-स्थल बन जाता है। फिर ऐसे प्राणी के जीवन में अशान्ति कहाँ? इसी से श्रीरामकृष्ण कहते हैं—पहले ईश्वर लाभ करो, फिर, धन कमाना इसके विपरीत पहले धन लाभ करने का कोशिश मत करो। यदि तुम भगवत्प्राप्ति कर लेने के बाद संसार में प्रवेश करो तो तुम्हारे मन की शान्ति कभी नष्ट नहीं होगी।"

२. सर्व धर्म समन्वय : यतो मत ततो पथ

यह श्रीरामकृष्ण ही थे जिन्होंने सर्वप्रथम हमें बताया कि सभी धर्म एक ही सत्य की घोषणा करते हैं। अन्तर अनुष्ठानों और पूजा उपासना की पद्धतियों में है, मूल धर्म में नहीं।

आज धर्म को लेकर जितने संघर्ष होते हैं, जितनी हत्याएँ होती है, जितना विद्वेष फैलाया जाता है, उससे खीझकर लोग यह सोचने लगते हैं कि सारे अनर्थों की जड़ धर्म ही है। कुछ देशों ने इसलिए यह प्रयोग शुरू किया है कि समाज में धर्म का स्थान ही न हो।

किन्तु धर्म उपासना पद्धति में नहीं, आचरण के सौन्दर्य में है, अनुभूति की प्रामाणिकता में है। स्वामी विवेकानन्द कहा करते थे—'तुम इस बात को ध्यान में रखो कि धर्म न बातों में है, न सिद्धांतों में और न पुस्तकों में, वह है प्रत्यक्ष अनुभव में। वह "सीखना" नहीं है, "होना" है। "चोरी मत करो" इसे सब जानते हैं, पर इससे क्या ? इसे तो यथार्थ में उसी ने जाना, जिसने चोरी नहीं की। ...साक्षात्कार या प्रत्यक्षानुभूति की यह शक्ति ही धर्म की निर्णायक है। अपने मस्तिष्क में सिद्धांतों दर्शनों और नैतिक पुस्तकों को जितना चाहे ठूँस लो, उससे कुछ लाभ नहीं होने का, असली चीज है—वह जो तुम हो तथा वह सत्य, जिसे तुमने उपलब्ध किया है।"

श्रीरामकृष्ण ने विभिन्न धर्मों की दीर्घ साधना कर इस सत्य की प्रत्यक्षानुभूति की थी कि सभी धर्म एक ही ईश्वर की ओर ले जाने के अलग-अलग पथ हैं। इसी से उन्होंने धर्मान्धों को एक नयी दृष्टि दी एक नया दर्शन दिया, एक अभिनव मन्त्र दिया—"यतो मत ततो पथ"। यह एक महावाक्य है। धर्म के एकत्व की घोषणा तो श्रीरामकृष्ण के पूर्व भी अनेक सत्पुरुषों तथा अनेक सद्ग्रंथों ने की थी किन्तु उनमें अनुभूति की प्रामाणिकता नहीं थी। श्रीरामकृष्ण के पास अनुभूति की विभूति थी। इसी से उनके कथन में प्रामाणिकता, ईमानदारी, तलस्पर्शिता और आन्तरिकता है। अन्य संत या महापुरुष हमें अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णुता सिखाते हैं। किंतु श्रीरामकृष्ण अन्य धर्मों की स्वीकृति की शिक्षा देते हैं। साहिष्णुता और स्वीकृति में गहरा भेद है। किसी की उद्दण्डता, उच्छृंखलता या दुराचार को हम सह ले सकते हैं। किंतु उसे स्वीकार नहीं सकते। स्वीकृति तो एक सहज आंतरिक वृत्ति है। श्रद्धा और आस्था के अभाव में स्वीकृति का शतदल नहीं खिलता। श्रीरामकृष्ण अन्य धर्मों की स्वीकृति का सुरम्य सन्देश देकर, समस्त धर्मों के बीच के अन्तराल को मिटाने का एक स्निग्ध सेतु हो गये हैं। वे कहते हैं।—"जैसे कालीघाट के काली-मन्दिर में जाने के लिए बहुत से रास्ते हैं। वैसे ही भगवान के घर जाने के लिए भी बहुत से रास्ते हैं। हर एक धर्म एक राह है।" इनके इस कथन में कितनी विश्वसनीयता है—"सभी सियारों की पुकार एक सी होती है। सभी ज्ञानियों का उपदेश एक ही होता है।"

संत कबीर से लेकर महात्मा गाँधी तक सबने भारत में धर्मों की खाई पाटने के लिए अपने-अपने सबल सिद्धांत प्रस्तुत किये है। किंतु इसमें सन्देह नहीं है कि यदि इस देश में कभी धर्म के बीच का विद्वेष और वैर समाप्त होगा तो वह श्रीरामकृष्ण के बताये मार्गों पर चलकर ही, उनके उपदेशों को अपने जीवनाचार में उतारकर ही। इतना ही नहीं, आज तो विश्व के कई विख्यात वैज्ञानिक, प्रखर चिंतक और प्रख्यात मनीषी यह मानने लगे हैं कि संसार में किसी एक धर्म को स्वीकार किया जाय तो वह श्रीरामकृष्ण का धर्म ही होगा और यदि किसी एक ईश्वर को सबके ईश्वर के रूप में स्वीकार किया जाय तो वह स्वयं श्रीरामकृष्ण ही होंगे।

३. शिवज्ञान से जीव सेवा

एक दिन श्री चैतन्यदेव द्वारा प्रवर्तित वैष्णव धर्म की चर्चा के प्रसंग में श्रीरामकृष्ण ने कहा—"इस मत में मनुष्य को इन तीन बातों का पालन करने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहने का उपदेश दिया जाता है—भगवान के नाम में रुचि, जीवों पर दया, वैष्णवों का पूजन। जो नाम है वही, ईश्वर है, नाम और नामी अभिन्न हैं—यह जानकर सदा अनुराग सहित नाम लेते रहना चाहिए। कृष्ण और वैष्णव, भक्त और भगवान अभिन्न हैं, यह जानकर सदा साधु भक्त जनों की श्रद्धापूर्वक सेवा-वन्दना करनी चाहिए, यह जगत् संसार श्रीकृष्ण का ही है इस बात की हृदय में धारणा कर सब जीवों पर दया".....। सब जीवों पर दया, इतना कहते ही श्रीरामकृष्ण एकाएक समाधिस्थ हो गये। फिर कुछ देर बाद अर्द्ध बाह्य अवस्था में आकर कहने लगे "जीवों पर दया ? जीवों पर दया ? धत् मूर्ख। तू स्वयं कीटानुकीट होकर जीवों पर दया करेगा ? दया करने वाला तू कौन है ? नहीं, नहीं, 'जीवों पर दया नहीं - शिव बुद्धि से जीवों की सेवा।"

वैषम्य और भेद बुद्धि से ग्रसित वर्तमान युग के मानव समूह के लिए यह एक महामन्त्र है जो उस दिन श्रीरामकृष्ण ने कुछ भक्तों के बीच प्रदान किया था। इसे बीज मन्त्र कह सकते हैं। क्यों ? दया और सेवा में अन्तर है। दया करने से दया के जिस पात्र पर हम दया करते हैं, उसे अपने से हीन और असहाय समझते हैं। इससे हमारे मन में अहंकार जगता है और भेद बुद्धि उपजती है। फिर दया करके हम अपने अहंकार को तुष्ट करते हैं और एक प्रकार को भोग ही भोगते हैं। इस प्रकार दया का भाव हमें गिराता है जब कि सेवा का भाव, जीव को शिव मानकर उनकी सेवा करने का भाव हमें पूजा की स्थिति में ला खड़ा करता है। पूजा में अहंकार कैसा ? इस भाव में आने पर जिसकी हम सेवा करते है वह हमारा कृतज्ञ नहीं होता बल्कि हम उसके कृतज्ञ होते है। क्योंकि उसने हमें अवसर प्रदान किया कि उसके चरणों पर हम सेवा के कुछ सुमन अर्पित करें। स्वभावतः सेवा, शिव-ज्ञान से जीव सेवा का भाव हमारे अहंकार को झाड़ता है, हमारे चित्त को शुद्ध करता है। और निरहंकृत शुद्ध चित्त और शुद्ध ज्ञान में भेद नहीं है। शुद्ध हृदय पुरुष ही परमात्मा है। अतः सेवा हमें ब्रह्मत्व में रूपान्तरित करने का सर्वोत्तम साधन है।

श्रीरामकृष्ण के इस सेवा मन्त्र को नरेन्द्र नाथ (कालान्तर में स्वामी विवेकानन्द) ने भी सुना था और सुनते ही इस मन्त्र के मर्म को समझकर वे सहसा कह उठे थे—'इस पगले ब्राह्मण के चरणों पर मेरा मस्तक बिक गया।"

जीव सेवा पर बल तो श्रीरामकृष्ण के पूर्व भी आचार्यों ने दिया था किन्तु शिव बुद्धि से जीव सेवा का सन्देश इनके पूर्व किसी ने नहीं दिया था। सेवा की दृष्टि में ही मौलिक अन्तर है। श्रीरामकृष्ण थे एक अद्भुत आदर्श गुरु। उन्होंने सेवा को पूजा का प्रतिरूप बनाकर प्रस्तुत किया। इससे सेवा भी होती है और अहंकार से बचकर चित्त की शुद्धि भी होती है। भाव यह रहता है कि हम जिसकी सेवा कर रहे हैं वह कोई साधारण जीव नहीं, बल्कि साक्षात शिव ही है। परमात्मा ही सभी जीवों में व्याप्त हैं। अतः हम प्यासे को नहीं, शिव को पानी दे रहे है, भिखारी को नहीं, शिव को भोजन दे रहे हैं, कोढ़ी को नहीं, शिव की सुश्रूषा कर रहे हैं—यह भाव है जीव को देखने का।

सेवा जीव रूपी शिव से हमें जोड़ने का सबसे बड़ा साधन है। अतः सेवा सबसे बड़ा योग है।

सेवा का फूल निष्कामता के तपोवन में खिलता है। प्रभु को समस्त जगत् और जीवों में देखने की दृष्टि की डाल पर सेवा की कलिका चटकती है। अतः सेवा सबसे बड़ा ज्ञान है। सेवा शिव की ही अराधना है। अतः सेवा सबसे बड़ी भक्ति है।

सेवा से अधिक निर्मल कोई कर्म नहीं। अतः सेवा सबसे बड़ा कर्म है।

यानो सेवा सर्वोत्तम योग है महत्तम ज्ञान है, परम भक्ति और शुद्धतम कर्म है।

आज शिव दृष्टि से जीव सेवा करने की जितनी आवश्यकता है उतनी शायद पहले कभी नहीं थी। वर्तमान विभ्रान्ति, पथहारा और विसंगतियों से भरे हुए मूल्य रहित समाज के स्वास्थ्य और सौन्दर्य के संवर्धन के लिए शिव-दृष्टि से जीव-सेवा की आज बड़ी आवश्यकता है। एक डाक्टर अपने रोगियों की शिव दृष्टि से सेवा करे, शिक्षक अपने छात्रों में कोमलमति शिव का दर्शन कर उन्हें शिक्षा दे, राजनेता जनगण में विराट शिव का साक्षात्कार कर उनकी निस्पृह सेवा करें। दफ्तर का अफसर और कर्मचारी, कारखाने का मालिक और मजदूर तथा खेतों में कार्यरत किसान हर कोई शिव के लिए सेवा करने लगे, तब हमारे समाज और राष्ट्र का रूप और स्वरूप कितना सुन्दर, सुघड़ और कितना भद्र हो जायेगा? इसकी सहज कल्पना की जा सकती है।

श्रीरामकृष्ण और आगत शताब्दी

आज वैज्ञानिकता पर जोर है। अगली सदी विज्ञान की सदी होगी। विज्ञान कहीं हमें हृदय-हीन न कर दे, यह आशंका है। पर वैज्ञानिक-दृष्टि की हम उपेक्षा नहीं कर सकते। विज्ञान के दो पक्ष हैं—फलमय विज्ञान (Science as fructifera) और ज्योतिर्मय विज्ञान (Science as lucifera) श्रीरामकृष्ण ज्योतिर्मय विज्ञान के साधक थे। इसी से वे जगत में व्याप्त परम चैतन्य से एकमेक हो गये, सान्त होकर अनन्त से समरस हो गये। यही कारण है कि डाल पर लगे फूल उन्हें ईश्वर पर चढ़े दीखते थे, दूब पर चलने से उन्हें कष्ट होता था और किसी मछुआरे की पीठ पर चोटें लगने पर दाग उनकी पीठ पर उभर आता था। यानो विश्व चेतना से वे एकमेक हो गये थे। इक्कीसवीं सदी में यदि हमने यह दृष्टि नहीं पायी तो हमारी वैज्ञानिकता का दावा खोखला ही बना रहेगा।

अब तक के अवतार श्री राम, श्री कृष्ण, बुद्धदेव, मुहम्मद आदि जन्म से ही श्रीसम्पन्न थे। राजे-महाराजे थे। वे बड़े थे और मानव की तरह उन्होंने आचरण किया था। किन्तु श्रीरामकृष्ण जन्म से निर्धन थे, दरिद्र थे। वे जन्म से मनुष्य थे और ईश्वर की भाँति उन्होंने आचरण किया था। एक साधारण मनुष्य स्वयं को कैसे ईश्वर बना सकता है—श्रीरामकृष्ण ने इसे अपने जीवन में प्रदर्शित कर दिखाया। हम मनुष्य हैं भोग के लिए नहीं, हम मनुष्य हैं देवत्व में रूपान्तरित होने के लिए। और स्वयं देवता बनकर श्रीरामकृष्ण संतुष्ट नहीं होते। श्रीसारदा देवी की पूजा करके उन्हें मानुषी से भवतारिणी बना देते हैं। अर्थात् स्वयं देवता बन जाना काफी नहीं है, सब को देवता बनाना होगा। यही है सही सत्यानुसन्धान की दृष्टि। इक्कीसवीं सदी में यदि इस दृष्टि के साथ हम नहीं प्रवेश करते हैं तो विज्ञान अधूरा ही रह जायगा।

सब के प्रभु श्रीरामकृष्ण

एक बार श्री माँ सारदा ने किसी अपवित्र नारी के हाथों छुलाया गया भोजन श्रीरामकृष्ण को परोस दिया। ठाकुर श्रीरामकृष्ण ने कहा।—"देख, यह खाना खाया नहीं जाता। वादा करो कि अब से किसी अपवित्र व्यक्ति के हाथों स्पर्श किया हुआ भोजन मुझे नहीं दोगी।" श्री माँ सारदा ने श्रीरामकृष्ण से कहा—"नहीं, ऐसा वादा मैं नहीं कर सकती। फिर तुम केवल मेरे ही ठाकुर तो नहीं हो, सब के ठाकुर हो।" माँ ने मानो उस दिन एक चिरन्तन सत्य की घोषणा कर दी थी। श्रीरामकृष्ण सबके ठाकुर है, सब के प्रभु हैं। वे आये थे शुद्ध सत्य लेकर। अन्य अवतारों में रजस है। पर श्रीरामकृष्ण शुद्ध सत्व के साकार रूप थे। वे आये थे सबको उसी शुद्ध सत्व में प्रतिष्ठित करने, सबको नरता से उठाकर देवता के शिखर पर अधिष्ठित करने। वे कहा करते थे—'तुम सब मेरे पास आओ।" वे वस्तुतः हमारे आगमन की प्रतीक्षा कर रहे हैं। हमें तैयार होना है परम प्रभु, एक पूर्ण अमृत कुम्भ, भगवान श्रीरामकृष्ण से पास जाने के लिए ताकि हम देवत्व में स्थित हो सकें। हम जितना ही उन्हें चाहेंगे, जितना ही उनके निकट जायेंगे, हम उतने ही शुद्ध होंगे, उतने ही पूर्ण होंगे, उतने ही चैतन्य को प्राप्त होंगे। अपने लीला-संवरण के कुछ ही दिनों पूर्व उन्होंने हम सबको आश्वासन की वाणी में कहा जो था—"मैं अधिक और क्या कहूँ। तुम सबको चैतन्य प्राप्त हो!" जय श्रीरामकृष्ण!

श्रीरामकृष्णदेव और सर्व-धर्म समन्वय

—श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्दजी महाराज
महाध्यक्ष, रामकृष्ण मठ और मिशन

आज हम यहाँ पर उन आदर्शों और विचारों पर ध्यान करने के लिए एकत्र हुए हैं, जिनके मूर्तिमान-स्वरूप श्री रामकृष्ण थे। उनका जीवन बड़ा विलक्षण था, क्योंकि जिस धर्म का प्रतिपादन उनके जीवन के माध्यम से हुआ, वह धर्म उतना ही प्राचीन है, जितनी प्राचीन विश्व की यह रचना।

अथच वह धर्म उतना ही नया और ताजा है जैसे अभी खिला हुआ गुलाब अपने सौरभ का विस्तार करता है। ये दोनों बातें एक-दूसरे की विरोधी होती हुई भी श्रीरामकृष्ण के जीवन में बड़े आश्चर्यजनक रूप से समन्वित हुई थीं। एक ओर सनातन धर्म का वह आदर्श जो प्राचीन काल से चला आया है, जहाँ पर हम उन आदर्शों को शास्त्रों के माध्यम से प्राप्त करते हैं, वहीं दूसरी ओर उनके जीवन के द्वारा निजधर्म इस प्रकार अभिव्यक्त हुआ कि आज का मानव अपनी बुद्धि और मस्तिष्क से धर्म के उन आदर्शों के द्वारा तृप्ति प्राप्त करता है। यह जो विलक्षण समन्वय उनके जीवन में प्राचीनता और अर्वाचीनता का हुआ

है, यह अपने आप-में एक बड़ी विचित्र बात है।

श्रीरामकृष्ण ने किसी नये सत्य का उपदेश नहीं दिया है और वास्तव में वे तो यह कहा करते थे कि मैं उपदेशक नहीं हूँ। मैं कोई प्रचारक नहीं हूँ। पर उनके जीवन की क्रियाओं से धर्म मानो सम्पादित होता था, ध्वनित होता था।

५ या ६ वर्ष की उम्र थी, तभी उन्हें प्रथम समाधि का अनुभव हुआ था। जैसा कि हम जानते हैं, जिस समय उन्होंने वह सुन्दर दृश्य देखा कि काले मेघ की पृष्ठभूमि में बगुलों की सफेद पंक्ति उड़ती हुई जा रही है तो वे बाह्य संज्ञा खो बैठते हैं और थोड़ी देर के लिए उस स्थिति में अवस्थान करते हैं जिसे हमने समाधि का नाम दिया है। अब यह जो भाव है, यह तो किसी प्रयास के द्वारा प्राप्त हुआ भाव नहीं है, वह उनके जीवन में निसर्गवत् आता है; उनके जीवन का यह भाव किसी साधना का फल नहीं था, यह तो मानो उसी प्रकार उनके लिए स्वाभाविक था, जैसे हम सांस लेते हैं या जैसे हमारी नसों में खून दौड़ता है, ठीक इसी प्रकार की स्वाभाविकता ईश्वर संबंधी भावों के सम्बन्ध में उनकी थी, यह हम श्रीरामकृष्ण देव के जीवन के माध्यम से देखते हैं। और उनका जीवन कैसा था? जीवन में कभी ईश्वर के सम्बन्ध में प्रश्न नहीं आया। कभी उन्हें कोई शंका नहीं हुई। उनके ईश्वर तो स्वभावसिद्ध थे। उनकी साँसों में ईश्वर भरा हुआ था और इसीलिए उनके जीवन में कभी हम यह शंका नहीं देखते कि उन्होंने कभी ईश्वर के अस्तित्व पर अविश्वास किया हो। जैसा मैंने कहा कि उनके जीवन में ईश्वर के प्रति विश्वास सांसों के समान स्वाभाविक था। ऐसे ही श्रीरामकृष्ण थे।

वे दक्षिणेश्वर में आते हैं। जब उनकी साधना शुरू होती है तो वह भी किसी विधि के द्वारा नहीं होती। वह भी मानो अचानक बिना किसी योजना के शुरू होती है। वे जगन्माता की उपासना करते हैं, पर जगन्माता का तात्पर्य उनके लिए क्या था? जगन्माता उनके लिए कोई पाषाणमयी मूर्ति नहीं थी, जो दक्षिणेश्वर के मंदिर में प्रतिष्ठित थी। वे तो उस जगन्माता के दर्शन करना चाहते थे, जो चिन्मयी थी, जो बाहर निकले, जो प्रेममयी हो, जो बातचीत करे और उसी प्रकार स्नेह और दुलार करे, जैसे एक माँ अपने बच्चे के प्रति करती है।

और हम पढ़ते हैं, कितनी आकुलता के साथ उन्होंने जगन्माता को पुकारा और हम यह भी पढ़ते हैं कि जगन्माता के उन्हें दर्शन हुए। और कैसा दर्शन? मानो आनन्द की लहरें एक के ऊपर एक उमड़ रही हो और आनन्द की लहरों में वे समा जा रहे हों। इस प्रकार का दर्शन श्री रामकृष्ण को होता है और जब दर्शन हो गये जगन्माता के तो जगन्माता के तत्व को वे हमारे समक्ष रखते हैं। यह जगन्माता उनके लिए क्या हैं? यह जगन्माता उनके लिए उस परम सत्य की शक्ति हैं, जिसे हम महामाया कहते हैं। जिस शक्ति के माध्यम से इस विश्व का सृजन, पालन और संहार होता है, वही वह शक्ति है श्रीरामकृष्ण की दृष्टि में और वे उस परम सत्य के साथ अभिन्न हैं। जिसे हम ब्रह्म कहें परमात्मा कहें वह परम सत्य इसी शक्ति से समन्वित होकर के संसार का संचालन करता है, इस दृष्टि से, महामाया की दृष्टि से उन्होंने जगन्माता की उपासना की। उनके जीवन में धन्यता आयी और फिर इसके बाद हम देखते हैं कि उनके मन में विचार उत्पन्न होता है और वे जगन्माता से प्रार्थना करते हैं और कहते हैं माँ! जिस प्रकार अन्य रास्तों से चलने वाले साधक तुम्हें प्राप्त करते हैं, मैं भी उसी प्रकार तुम्हें प्राप्त करना चाहता हूँ। यह श्रीरामकृष्ण की विलक्षणता है। वे जगन्माता के दर्शन से

सन्तुष्ट नहीं रहे, वे प्रार्थना करते हैं कि जिन पथों से चलकर के दूसरे पथ के साधकों ने उस सत्य के दर्शन किए, उसी सत्य का दर्शन वे भी उन्हीं पथों से चलकर के करना चाहते हैं और इसकी व्यवस्था भी जगन्माता उनके जीवन में कर देती हैं। उनके जीवन में कितने भिन्न-भिन्न मतों और पथों के लोग आते हैं, धर्म के नेतागण आते हैं, और उन्हें उस रास्ते से ले जाते हैं।

हम पढ़ते हैं कि उन्होंने तन्त्र-मन्त्र की साधनाएँ कीं और फिर उसके बाद उन्होंने वैष्णव मत की भी साधनाएँ कीं, अन्य मतों और धर्मों की भी साधनाएँ कीं और अन्त में वे अद्वैत मत की भी साधना करते हैं। अद्वैत मत वेदान्त के द्वारा हमारे समक्ष रखा गया है और जिस समय वे साधना करते हैं, उनके जीवन में अद्वैत पर एकांत निष्ठा रखने वाले तोतापुरी आते हैं। तोतापुरी ने उन्हें गंगा के किनारे बैठा देखा, तब तोतापुरी ने उनसे पूछा कि क्या तुम अद्वैत मत की साधना करोगे ? तो उन्होंने कहा कि मैं कुछ नहीं जानता, मेरी माँ जानती है। तोतापुरी ने कहा तो बच्चे जाओ अपनी माँ से पूछा लो। (तोतापुरी को ऐसा लगा कि इस बालक की माता यहाँ पर मन्दिर-दर्शन के लिए आयी होगी, इसलिए तोतापुरी ने कहा कि जाओ अपनी माँ से पूछ लो।) श्री रामकृष्ण यह सुन करके उठते हैं और द्रुत पदों से काली मन्दिर में जाते हैं और वहाँ जाकर के जो उन्हें पूछना होता है पूछते हैं और लौट करके तोतापुरी से कहते हैं कि माँ ने मुझे अनुमति दे दी है अद्वैत साधना की। तो ठीक है। तुम मुझे अद्वैत मत सिखा सकते हो। तोतापुरी को जब पता लगा कि इतना ऊँचा आधार उस मन्दिर की पाषाणमयी मूर्ति को अपनी माँ कहता है, जगन्माता कहता है, तो उन्हें बड़ा अफसोस हुआ कि ऐसा ऊँचा अद्वैत का आधार। पर इसके भीतर ऐसे कुसंस्कार भरे हुए हैं और तोतापुरी उन कुसंस्कारों को दूर करने का प्रयास भी करते हैं। अद्वैतवाद का शिक्षण देते हैं। और उन्होंने बड़े आश्चर्य से देखा कि जब वे अद्वैत के तत्व की बातें सिखा रहे थे श्री रामकृष्ण को, तो ३ दिनों में ही समाधि लग गयी। जिसे निर्विकल्पक समाधि कहा जाता है। तोतापुरी को जब यह पता चला, परीक्षण के द्वारा कि यह निर्विकल्पक समाधि है तब वे बड़े आश्चर्य में डूब गये और उनके मुख से निकल पड़ा कि जिस निर्विकल्पक को पाने के लिए मैंने अपने जीवन के ४० वर्ष कठोर तपस्या में बिताये, इस बालक ने उसे ३ दिन में ही हासिल कर लिया। यह कैसी दैवी माया है ! इस प्रकार का भाव तोतापुरी के मन में उदित होता है और सचमुच श्रीरामकृष्ण विलक्षण-अद्वैत समाधि में मग्न हो गये और फिर उसके बाद वे अपने मन को नीचे लाने का प्रयास करते हैं। तोतापुरी अपने शिष्य के जीवन को देख कर इतने मुग्ध हो जाते हैं कि वे ११ महीनों तक दक्षिणेश्वर में रहते हैं और श्रीरामकृष्ण के साहचर्य में आकर उनके सामीप्य में रहकर, वे श्रीरामकृष्ण से उपदेश ग्रहण करते हैं। यह भी रामकृष्ण की विलक्षणता थी कि जो भी उनके जीवन में गुरु बनकर आया वही अन्त में उनसे उपदेश लेता हुआ गया। जैसे तोतापुरी का उदाहरण है। तोतापुरी पहले केवल उस अद्वैत और निर्गुण ब्रह्म में विश्वास करते थे। माया में या शक्ति में उनका विश्वास नहीं था। वे शक्ति को मिथ्या कहा करते थे, पर श्रीरामकृष्ण के साहचर्य में रहते हुए उन्होंने शक्ति की सत्यता का अनुभव किया। श्रीरामकृष्ण अपने गुरु को समझा देते हैं कि जैसे अग्नि और उसकी दाहिका शक्ति दोनों सत्य हैं। जगन्माता को शक्ति मानता हूँ। तोतापुरी अंत में इस सत्य के कायल हो जाते हैं और ११ महीने के बाद श्री

रामकृष्ण से विदा लेते हैं।

पर श्री रामकृष्ण का यह बड़ा विलक्षण जीवन है कि वे शिष्य तो हैं कई लोगों के, परन्तु अन्त में वे उन सबके गुरु बन जाते हैं। पर गुरु जो बनते हैं, उनमें किसी प्रकार का गुरु बनने का भाव नहीं है। जैसा पहले कहा, उन्होंने यह कभी नहीं कहा कि मैं किसी प्रकार का उपदेशक हूँ प्रचारक हूँ। बल्कि मैं यह कहा करता हूँ कि श्री रामकृष्ण ऐसे प्रचारक हैं जिन्होंने कभी प्रचार नहीं किया—यह बड़ी विलक्षण बात मालूम पड़ती है सुनने में। पर श्री रामकृष्ण के सम्बन्ध में यह अत्यन्त सत्य है। इसलिये सत्य है कि श्री रामकृष्ण कभी अपने को प्रचारक मानते नहीं थे, कभी अपने को उन्होंने उपदेशक की दृष्टि से देखा नहीं। वह जो भी उपदेश था, वह तो नैसर्गिक रूप से उनके माध्यम से निकलता था और वह अपने-आपको जगन्माता का यन्त्र मानते थे और वे स्वीकार करते थे कि जगन्ममाता उनके माध्यम से जो कुछ करना चाहती हैं, करा रही हैं। यह श्री रामकृष्ण की भावना थी। इसीलिए एक दिन का प्रसंग यहाँ पर उल्लेखनीय हो जाता है—एक दिन उन्होंने अपने एक शिष्य से पूछा 'अच्छा बताओ, मुझ में कितना अहंकार दिखाई देता है, अहंकार दिखता है क्या ?" उस शिष्य ने भी जो बहुत दिनों तक संपर्क में रह चुका था, कहा महाराज ! आप में कोई अहंकार नहीं है, पर अपने भीतर थोड़ा-सा अहंकार आपने रख छोड़ा है, जिससे जगत् का कल्याण हो, लोगों का कल्याण हो। श्री रामकृष्ण तुरन्त कहते हैं कि देखो यह अहंकार मैंने नहीं रख छोड़ा है, यह अहंकार माँ ने ही रख दिया है, जिससे माँ अपना कार्य करा सके। यह श्री रामकृष्ण की दृष्टि थी प्रचार के सम्बन्ध में, उपदेश के संबंध में। यहाँ पर हमने कहा कि श्री रामकृष्ण ने कभी अपने को प्रचारक नहीं माना या किसी प्रकार से अपने को उपदेशक नहीं माना। वे तो यही मानते थे कि वे जगन्माता के यंत्र-स्वरूप थे और जगन्माता उनकी इस देह का आश्रय लेकर, उनके इस शरीर को माध्यम बना करके अपना कार्य करा लेना चाहती हैं। ऐसा वह अद्भुत भाव था, उनके भीतर और इसीलिए हम देखते हैं कि इस भाव को हमने अवतारी पुरुष के भाव के रूप में स्वीकार किया है। किसलिए किया ?

उनकी लीला का संवरण भी बहुत जल्दी हुआ। १८८६ में वे लीला का संवरण कर लेते हैं पर कितने थोड़े दिनों में ही, अल्प दिनों के भीतर में उनके भावों का प्रसार विश्व के कोने-कोने में हो जाता है। सब लोग उनके संबंध में जान लेते हैं। यह बड़ी विलक्षण बात है कि १८८६ में वे इस मृत्यु लोक से जाते हैं पर कुछ ही वर्षों के भीतर में सारा विश्व उनके आदर्शों से, उनके द्वारा उपदिष्ट सत्यों से परिचित हो जाता है। यहाँ तक कि जो लोग श्री रामकृष्ण संघ के केन्द्रों से परिचित नहीं हैं या श्री रामकृष्ण संघ मिशन के किसी साधु के सामीप्य में नहीं हैं ऐसे लोगों ने भी श्री रामकृष्ण के जीवन के सन्देशों की छाप अपने जीवन में अनुभूत की है। यह भी सत्य है।

तो इसलिए हम कह रहे हैं कि श्रीरामकृष्ण आते हैं युगावतार के रूप में और विवेकानन्द तो यह कहा करते थे कि जब से श्री रामकृष्ण का आगमन हुआ है, सतयुग प्रारम्भ हो गया है। हम देखते हैं कि श्री रामकृष्ण का जीवन ही धर्म का मानो मूर्तिमन्त समन्वय था और धर्म का यही मूर्तिमन्त समन्वय भाव उनके जीवन के माध्यम से प्रस्फुटित होता है। उन्होंने यह जो कहा कि ये सारे धर्म एक ही सत्य को पाने के रास्ते हैं, तो उन्होंने किसी सत्य का सामान्यीकरण नहीं किया। बल्कि वह सत्य उनकी अनुभूति का फल था। जीवन में उन्होंने उस सत्य को अनुभूत किया है

और जब इस सत्य की प्रतीति उन्हें स्वयं की अनुभूति के बल पर, तब उन्होंने घोषण की जैसा कि हमने अभी सुना है—जितने मत उतने पंथ। ये श्री रामकृष्ण के उद्गार थे, जो उनकी अनुभूति से निकले थे और वे इस धर्म को अपने जीवन के माध्यम से संसार के समक्ष रखते हैं।

यह ठीक है कि उनका विश्वास क्रिया अनुष्ठान में विशेष नहीं था, यह धर्म का एक भाव है, जिसमें हम क्रिया अनुष्ठान पर जोर देते हैं।

अब भिन्न-भिन्न प्रकार की जो परम्परागत बातें है, उन बातों पर जोर दिया करते हैं, पर श्री रामकृष्ण उन बातों को काटते भी नहीं थे, बल्कि यह कहते थे कि जो मनुष्य है जिस मत, धर्म, परम्परा में विश्वासी है, उसका वह पालन निष्ठा के साथ करता रहे, पर साथ-ही-साथ अपने मन में इस भाव का दृढ़ पोषण करे कि केवल उनका अपना रास्ता ही ठीक नहीं, बल्कि सभी रास्ते ठीक हैं। इस धारणा को उसके मन में रहना बहुत जरूरी है, इस बात पर वे बारम्बार जोर भी दिया करते थे। यह सत्य के सम्बन्ध में उनके जीवन के माध्यम से प्रचार था। जैसा हमने देखा कि उनके जीवन' उनके श्वास-प्रश्वास से मानो धर्म प्रचारित होता था। ऐसा अद्भुत श्रीरामकृष्ण का जीवन था। तो यह जीवन हमारे समक्ष आता है। वे ये लीला करके हमारे समक्ष आते हैं और धर्म के ये सत्य हमारे समक्ष उपस्थित करके जाते हैं। ऐसे जो श्री रामकृष्ण हैं, उनके जीवन से हमें यही सीख लेनी होगी—धर्म को अपने जीवन में उतारना होगा।

आज संसार कितने प्रकार के विवादों से ग्रस्त है! आज संसार में हम कितनी अशांति देखते हैं? श्री रामकृष्ण के जीवन को केन्द्र बना करके हम अपने जीवन की अशांति को दूर कर सकते हैं। उनके जीवन में यह शक्ति है, वह प्रेरणा देने की शक्ति है, जिसके माध्यम से हम धर्म के केन्द्रीय भाव को अपने जीवन में आत्मसात् कर सकते हैं और अपने-आपको धन्य बना ले सकते हैं। और श्री रामकृष्ण के जीवन में जो एक बड़ी अद्भुत बात आयी, वह यह थी कि जब श्री रामकृष्ण धर्म का इस प्रकार चिन्तन कर रहे थे, तो धर्म के चिन्तन में उन्होंने ईश्वर को ऐसा कोई ईश्वर नहीं माना, जो संसार से बहुत ऊपर बैठा हुआ हो। उस ईश्वर की कल्पना उन्होंने नहीं की। तब उन्होंने क्या किया? उन्होंने उसी ईश्वर को, जिसे हम संसार से बाहर समझते हैं, संसार में लाने का प्रयास किया। संसार के माध्यम से उन्होंने ईश्वर को देखना सिखाया।

उनके जीवन का एक प्रसंग आता है। जैसे एक दिन ये आँखें बन्द करके ध्यान कर रहे थे और तब उन्हें ऐसा लगा कि मैं आँखें बन्द करके ईश्वर का ध्यान कर रहा हूँ तो क्या आँखें खुली रहने से ईश्वर का ध्यान नहीं होता, उन्होंने अपनी आँखें खोल दीं। और आँखें खोल करके उन्होंने ईश्वर को सभी वस्तुओं में देखा, संसार में व्याप्त जिस ईश्वर का दर्शन आँखें बन्द करके कर रहे थे। इसीलिए उन्होंने उपदेश दिया था कि वह ईश्वर जैसे आँखें बन्द करने पर दिखायी देता, है, वैसे ही आँखें खुली रहने पर दिखायी देता, बल्कि वे तो यह कहा करते थे कि जो ईश्वर आँखों को खुली रखने पर भी दिखायी नहीं देता हो तो उस ईश्वर का भला जीवन में क्या प्रयोजन है। ऐसा अद्भुत उनका जीवन है और ऐसा ईश्वरमय जीवन कि उन्होंने संसार को ईश्वर से अलग नहीं किया। वे निर्विकल्प समाधि के आनन्द में नहीं डूबना चाहते थे जिससे यह संसार छूट जाए; बल्कि वे यह चाहते थे कि वह ईश्वर है, वह निर्विकल्प समाधि का आनन्द इस संसार के माध्यम से व्यक्त हो। और इसलिए जब वे समाधि में जाने लगते तो वे जगन्माता से कहते "माँ! तू मुझे बेहोश मत कर, भक्तों के साथ मुझे बात

करने दे, इनके साथ कुछ बातें करने दे। वे जगत् का कल्याण किस प्रकार चाहते हैं, यह उनका एक निर्देशन है।

उनके जीवन में एक प्रसंग आता है। वे उपदेश देते हुए एक सुन्दर उदाहरण देते हैं। कुछ दोस्त रास्ते से चले जा रहे थे। उन्होंने देखा कि एक बहुत ऊँचा, बड़ा ऊँचा परकोटा है। उनके अन्दर से कुछ आवाजें आ रही हैं। इन दोस्तों को बड़ा विचित्र-सा लगा, कौतूहल भी हुआ कि इस परकोटे के अन्दर कौन है, और किसकी यह आवाज आ रही है। एक दोस्त ऊपर में परकोटे पर चढ़ता है और चढ़ करके जिस समय वह देखता है तो आनन्द से इतना विह्वल हो जाता है कि वह चिल्ला करके उस परकोटे के भीतर कूद पड़ता है। दूसरा दोस्त भी चढ़ा, यह कैसी विचित्र बात हो गयी कि यह ऊपर गया और उसने कुछ बताया नहीं कि परकोटे के अन्दर क्या है? उसने स्वयं आनंद से उल्लसित हो कर परकोटे के ऊपर चढ़ करके देखना चाहा कि परकोटे के अन्दर का क्या दृश्य है? वह भी चढ़ा और जिस समय उसने भीतर का दृश्य देखा, वह भी आनन्द से विह्वल हो जाता है और वह परकोटे के अन्दर कूद पड़ता है। तब तीसरा मित्र चढ़ा, उसने भी वह आनन्द का दृश्य तो देखा पर उसने अपनी उस भावना को दबा लिया, जो कह रही थी कि तुम भी चलो कूदो, परकोटे के भीतर कूद जाओ, और उस आनन्द का उपभोग करो। वह किसी प्रकार अपने को संयत करता है और चिल्ला-चिल्ला करके लोगों को बुलाता है कि आओ जरा आनन्द तो देखो: कैसा आनन्द यहाँ दिखाई दे रहा है। तो श्री रामकृष्ण इस प्रकार के थे। श्री रामकृष्ण उस तीसरे व्यक्ति के समान हैं जो बुलाते हैं सबको, जो निर्विकल्प समाधि के आनन्द में डूबकर के नहीं रहना चाहते, जो इस संसार को देखते हैं और संसार को देखते हुए दूसरों को जब बुलाते हैं कि आओ यह जो आनन्द है—जिसका उपभोग मैं कर रहा हूँ उस आनन्द का उपभोग तुम भी करो। वे सबको बाँटना चाहते हैं, यह आनन्द। यह श्री रामकृष्ण की वृत्ति है।

और इसलिए उनके अन्तिम दिनों में जब गले में कैंसर का रोग हो गया, बहुत पीड़ा होती थी। वे बोल नहीं सकते थे, फुस-फुसाकर बातें करते थे। उन दिनों भी चिकित्सक ने मना किया था कि किसी से आप बातें मत करें। तब भी जब कोई जिज्ञासु आता तो उसे बुला करके वे उससे बातें करते ताकि अपने जीवन में जिस ताप से वह त्रस्त है और जिस ताप को छुड़ाने के लिए, अपने को शीतल करने के लिए, अपनी रक्षा करने के लिए वह मेरे पास आया है उससे बातें करके उसके ताप को किसी प्रकार मैं कम करूँ? यह श्री रामकृष्ण का भाव था। अंतिम दिनों में कैंसर की पीड़ा से खूब छटपटा रहे थे तो भक्तों के प्रति, साधकों के प्रति उनका यह जो अनुराग था, वह दर्शनीय था। ऐसे हैं श्री रामकृष्ण।

तो विवेकानन्द कहा करते थे कि यह सतयुग आया है और यह उनके जीवन के माध्यम से प्रारम्भ होता है। हम लोग उस सतयुग के लाभ से वंचित न हों, यहाँ इस अवसर पर मैं कामना करता हूँ। उस सतयुग का लाभ हम सबको अपने जीवन में मिले, श्रीरामकृष्ण के जीवन के उद्देश्य को हम समझें, अपने जीवन के उद्देश्य को समझें और उस उद्देश्य को प्राप्त करके धन्य अनुभव करें।

तो इस अवसर पर मैं यही प्रार्थना करता हूँ कि हम सब लोग अपने जीवन में वह धन्यता प्राप्त करके अपने को धन्य करें, कृतार्थ करें और विश्व के लोगों के लिए एक आदर्श स्वरूप अपने को रख करके विश्व को, जिस तनाव से वह गुजर रहा है, उस तनाव से मुक्ति पाने के लिए हम भी सहयोग प्रदान करें।

(रामकृष्ण आश्रम, ग्वालियर में दिनाँक ११ नवम्बर १९७९ को दिये गये अंग्रेजी भाषण का हिन्दी रूपान्तर। आश्रम स्मारिका १९८९ से साभार)

श्री रामकृष्ण, धर्म और साम्प्रदायिकता

—स्वामी निखिलेश्वरानन्द
सम्पादक, रामकृष्ण ज्योत, रामकृष्ण आश्रम,
राजकोट

एक दिन संध्या के समय श्री रामकृष्ण कलकत्ता की जरतला की मस्जिद के पास से गुजर रहे थे। वहाँ उन्होंने एक अद्भुत दृश्य देखा। एक फकीर ऊँची आवाज में प्रार्थना कर रहा था—

प्रभु, तुम आओ, प्रिय तुम दया कर के आओ। प्रार्थना में इतनी व्याकुलता थी कि उसकी आँखों से अश्रुओं की धारा बह रही थी। उसी समय श्री रामकृष्ण कलकत्ता के कालीघाट से उस रास्ते से लौट रहे थे। अचानक टाँगे को रुकवाकर वे नीचे ऊतर कर दौड़कर फकीर के पास आए। दोनों एक दूसरे के गले लपक-प्रेमाश्रु बहाने लगे। इस अद्भुत दृश्य को देखकर सब आश्चर्यचकित हो गए।

ई० सन १८८५ में गले में कैंसर हो जाने से श्री रामकृष्देव को कलकत्ता के श्यामपुकुर मकान में ३१ अक्टूबर की सुबह लाया गया। वहाँ एक ईसाई संन्यासी श्री प्रभुदयाल मिश्र आए। लगभग ३५ वर्ष की उम्र, श्यामवर्ण मुख, विशाल आँखें, लम्बी दाढ़ी, हाथ में छड़ी यूरोपीय वस्त्रों में सुसज्जित, ऐसे संन्यासी ने श्री रामकृष्णदेव के कमरे में प्रवेश किया। श्री रामकृष्णदेव ने उनका स्वागत किया। बातचीत के दौरान श्री मिश्र ने तुलसीदासजी को उद्धृत करते हुए कहा, "एक राम उनके हजार नाम।" इसाई जिन्हें गॉड कहते हैं, उन्हीं को हिन्दू राम, कृष्ण ईश्वर आदि नामों से बुलाते हैं। एक तालाब के अनेक घाट हैं। हिन्दू एक घाट से पानी पीते हैं और उसे जल कहते हैं, ईसाई दूसरे घाट से पानी पीते हैं उसे कहते हैं···वॉटर, मुसलमान अन्य घाट से पानी हैं और उसे कहते हैं—पानी। इस तरह ईसाई के लिए जो गॉड हैं वही मुसलमान के लिए हैं अल्लाह।"

कमरे में बैठे हुए अन्य भक्तों ने मिस्टर विलियम के बारे में कहा जो प्रोटेस्टेंट ईसाई थे। उन्होंने गुड फ्रायडे के दिन (संभवत: १८७६) में श्री रामकृष्णदेव से भेंट की थी और श्री रामकृष्णदेव में उन्होंने ईसा मसीह का साक्षात् आविर्भाव देखा था। श्री मिश्र ने कहा, "इस समय उन्हें (श्री रामकृष्णदेव को) आप ऐसे देखते हैं किन्तु वे स्वयं ईश्वर हैं। आप लोग उन्हें पहचान नहीं पा रहे हैं। इस समय मैं उनमें ईश्वर को साक्षात् देख रहा हूँ। मैंने उन्हे दिव्य दर्शन में पहले भी देखा था। मैंने एक बगीचा देखा, जिसमें वे एक ऊँचे स्थान पर बैठे थे, नीचे एक अन्य व्यक्ति भी था किन्तु वह उतना बड़ा हुआ नहीं था।" बातचीत के प्रसंग में श्री मिश्र ने पतलून के नीचे पहना हुआ गेरुआ रंग का वस्त्र दिखाया और अपनी व्यक्तिगत बातें कीं। उनका जन्म ब्राह्मण परिवार में हुआ था। बाद में ईसा मसीह को अपना इष्टदेव मानकर वे क्वेकर सम्प्रदाय में शामिल हो गए। अपने एक भाई के विवाह के दिन शामियाने के टूटने से उस भाई की तथा उसके अन्य भाई की वहीं मृत्यु हो गई। उसी दिन

उन्होंने संसार का त्याग कर दिया था।

थोड़ी देर बाद श्री रामकृष्णदेव ने भावावस्था में श्री मिश्र से कहा तुम जिनके लिए प्रयत्न कर रहे हो वह अवश्य मिलेगा।" मिश्र ने श्री रामकृष्णदेव में अपने इष्ट ईसा मसीह को देखा और उनकी स्तुति करने लगे। फिर उन्होंने भक्तों से कहा, "तुम उन्हें पहचान नहीं सके हो, वे साक्षात् ईसा मसीह हैं।"

श्री रामकृष्देव को दिव्य अनुभूति हुई थी कि भिन्न-भिन्न धर्मों के लोग उनसे प्रेरणा पाएँगे और आध्यात्मिक प्रगति को प्राप्त करेंगे। उनके जीवनकाल में विविध धर्मों और सम्प्रदायों के बहुत से अनुयायी उनके पास आते थे। उनकी महासमाधि के बाद भी यह क्रम जारी है।

श्री रामकृष्णदेव के शिष्य स्वामी अखंडानंदजी जब हिमालय की यात्रा कर रहे थे तब उन्होंने एक मुसलमान की चाय की दुकान में श्री रामकृष्णदेव का फोटो देखा। स्वामी अखण्डानन्दजी ने आश्चर्य से इस बारे में पूछा तब वृद्ध मुसलमान ने उत्तर दिया, "मुझे नहीं मालूम कि यह किसका फोटो है। मैं बाजार गया था। जिस कागज में सब चीजें लिपटी हुई थी उसे खोलकर देखा तो उसमें से यह फोटो निकला। उनकी आँखों पर मैं मुग्ध हो गया। मुझे लगा ये हमारे पैगम्बर जैसे होने चाहिए। इसलिए मैंने यह फोटो फ्रेम में मढ़वाकर दुकान में रखा है।"

स्वामी अखण्डानन्दजी भी जब तिब्बत की यात्रा कर रहे थे तब कैलास के पास छेकरा में ल्हासा का एक धनवान खाम्हा उनके पास श्री रामकृष्णदेव का फोटो देखकर भावावस्था में आ गया और उसे लगा कि यह तो साक्षात् ईश्वर के ही चक्षु हैं। उसने स्वामी अखण्डानंदजी से वह फोटो माँग लिया और प्रतिदिन उसकी पूजा करने लगा।

१९०२ में श्री रामकृष्णदेव के शिष्य स्वामी अभेदानन्दजी महाराज न्यूयॉर्क में अपने अभ्यास कमरे में बैठे थे तब एक अमरिकन युवती ने प्रकाशन कार्य हेतु उस कमरे में प्रवेश किया। कमरे में प्रविष्ट होते ही मेज पर रखे हुए श्री रामकृष्णदेव के फोटो को देखकर वह आश्चर्यचकित हो गई, क्योंकि कुछ समय पहले बोस्टोन में उसे श्रीरामकृष्णदेव के अद्भुत दिव्य दर्शन प्राप्त हुए थे। किन्तु तब उसे मालूम नहीं था कि वे हिन्दू योगी कौन थे। स्वामी अभेदानंदजी से उसने उनके गुरु के विषय में सब जानकारी प्राप्त की। बाद में उसने संन्यास ग्रहण किया। मिस लाग फ्रैंकलीन ग्लैन का नया नाम हुआ—सिस्टर देवमाता"। श्री रामकृष्ण संघ के विदेश केन्द्रों में उन्होंने बहुत सेवा की।

अमरिका की अन्य युवती को भी स्वप्न में एक भारतीय योगी के दिव्य दर्शन हुए थे। यह घटना स्वामी विवेकानन्द के अमरिका जाने के पूर्व की है। अनेक वर्षों तक वह उन्हें खोजने के असफल प्रयत्न करती रही। विवाह के पश्चात् वह न्यूयार्क के पास न्यूजर्सी के मोन्टक्लेयर में रहने आई। स्वामी विवेकानन्दजी के व्याख्यान सुनकर वह वेदांत की अनुयायी बन गई। रामकृष्ण संघ के संन्यासी उनके घर जाते। एक बार स्वामी विवेकानन्दजी के गुरुभाई स्वामी सारदानन्दजी ने बातचीत के प्रसंग में अपने गुरु श्री रामकृष्णदेव का फोटो दिखाया तब वह बोल पड़ी "ओह यह तो वही चेहरा है।" बाद में उसने अपने दिव्य दर्शन की बात की। यह महिला (मिसेज व्हीलर) जीवन भर श्री रामकृष्णदेव की परम् भक्त रहीं।

अब सिर्फ भारतवर्ष के ही नहीं किन्तु समग्र विश्व के दार्शनिक धर्माचार्य विद्वान यहाँ तक कि इसाई और मुसलमान भी श्री रामकृष्णदेव को

समन्वय के मसीहा के रूप में स्वीकार कर रहे हैं। श्री रामकृष्णदेव ने अपने जीवन की प्रयोगशाला में विभिन्न धर्मों की साधना कर उसके चरम लक्ष्य की सिद्धि हासिल की और उसके बाद अपनी अनुभूति के आधार पर उन्होंने कहा—"जितने भाव, उतने पथ। सभी धर्म एक ही परम् सत्य की ओर ले जाते हैं, यद्यपि मार्ग अलग-अलग हैं।"

क्लाड एलन स्टार्क ने अपनी पुसाक ,The God of All' में विस्तारपूर्वक लिखा है कि श्री रामकृष्णदेव का सभी धर्मों के प्रति उदार दृष्टिकोण जो उनकी ईश्वर की साक्षात् अनुभूति पर आधारित है, धर्मों की विविधता की समस्या के समाधान के लिए व्यावहारिक सिद्धान्त प्रस्तुत करता है।"

बोस्टोन विश्वविद्यालय के प्रोफेसर फ्रेंसिस क्लूनी ने लिखा था—"श्री रामकृष्ण अन्य धर्मों के अनुयायिओं के साथ रहते हुए अपने धर्म का पालन करने का आधार प्रस्तुत करते हैं। श्री रामकृष्ण कहते हैं, हम ईसा मसीह की ओर जितनी तीव्र गति से यात्रा करेंगे, उतना ही अधिक हम समझ पाएँगे कि ईसा मसीह चाहते हैं कि हम अपने धर्म की चहारदिवारी से निकलकर उन्हें ढूंढ़ने का प्रयास करें। इसी विश्वविद्यालय के प्रोफेसर मुहम्मद दाऊद रहबर ने लिखा था—"सदियों की गुलामी के दौरान हिन्दुओं के धार्मिक विचारों को मुसलमान और ईसाइयों ने हीन दृष्टिभाव से देखा है। राजनैतिक स्वाधीनता मिलने के पश्चात् यह स्थिति बदल गई है। हिन्दुओं के धार्मिक प्रयत्नों की तीव्रता ने गौरव प्राप्त किया है। क्या सीधे और सरल रामकृष्ण अपने आप में पूर्ण वैज्ञानिक नहीं थे? उनके पवित्र जीवन में हम धर्म और विज्ञान का एक समन्वय देख सकते हैं।"

कलकत्ता के विद्वान श्री हौसेनुर रहमान अपनी पुस्तक 'The Symbol of harmony of Religion में विस्तार से लिखते हैं कि श्री रामकृष्ण साम्प्रदायिक समन्वय के उद्गम स्थान हैं।

आज हम बहुत ही कठिन परिस्थितियों से गुजर रहे हैं। ऐसा धर्म-मंदिर बनाने की आवश्यकता है जिसमें हिन्दू और गैर हिन्दू एक परम् चैतन्य की आराधना में हाथ मिलाएँ! यह प्रेरणा हमें श्रीरामकृष्णदेव के पास से मिलेगी। प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान प्रो० मैक्समूलर श्री रामकृष्ण के विषय में लिखे गए अपने लेख में लिखते हैं, श्री रामकृष्ण के वचनों द्वारा सिर्फ उनकी विचारधारा ही हमारे समक्ष प्रकट नहीं होती, किन्तु करोड़ों मानवों की श्रद्धा और आशा प्रकट होती है, तब उस देश के भविष्य के लिए हमें वास्तव में आशा की किरणें दिखाई देती हैं। ईश्वर प्रत्यक्ष रूप में विद्यमान है ऐसा भाव यदि बहता रहे तो यही ऐसी सर्वसामान्य भूमिका है जिस पर निकट समय में भविष्य के महान धर्म-मंदिर की स्थापना होगी और उस मंदिर में हिन्दू और गैर हिन्दू एक परम चैतन्य की आराधना करेंगे, हृदय से हृदय मिलेंगे ऐसी हम आशा कर सकते हैं।"

श्री रामकृष्णदेव के सर्वधर्मसमन्वय के भाव को दृष्टि में रखते हुए स्वामी विवेकानन्द ने रामकृष्ण मठ और मिशन के कार्यों में और आदर्श में साम्प्रदायिक एकता को महत्त्व दिया है। अपने गुरुभाई के साथ वार्तालाप के दौरान उन्होंने कहा था—जगत् के सभी धर्मों को एक अक्षय सनातन धर्म का रूपान्तर मात्र जानकर समस्त धर्मावलम्बियों को मैत्री स्थापित करने के लिए श्री रामकृष्ण ने जिस कार्य की उद्भावना की थी, उसीका परिचालन संघ का व्रत है।

श्रीरामकृष्ण-दोहावली

—डॉ० केदारनाथ लाभ

तप्त कनक-सी मुख विभा, रक्त-कमल-से नैन
चन्द्र-हास; मधु के सरिस, रामकृष्ण के बैन ॥१

ढूँढ़-ढूँढ़ कर थक गया, मिली न उपमा एक
रामकृष्ण के सदृश हैं, रामकृष्ण ही एक ॥२

मैंने मन के श्रवण से; रामकृष्ण-संगीत
सुने, आत्म-विस्मृत हुआ, जीवन हुआ अभीत ॥३

देखा, मन के नयन से, रामकृष्ण का हास
शरद-चन्द्र-चुम्बित यथा, समाधिस्थ कैलास ॥४

यह कैसा अपरूप है, रामकृष्ण का रूप
ज्यों हिमगिरि के शृंग पर, बालारुण की धूप ॥५

सासों में माँ सारदा, दृष्टि विवेकानन्द
रोम-रोम में रम रहे, रामकृष्ण सुख-कन्द ॥६

मैं खोया था रूप-रस, राग-रंग के बीच
तुमने करुणामय लिया, मुझे कींच से खींच ॥७

ठाकुर, तुमने हर लिया, मेरा यह संसार
अब तो निज पद-धूलि पर, दो अखंड अधिकार ॥८

मैं हो गया अवैतनिक, रामकृष्ण का भृत्य ।
अब उनका संकेत है, पल-पल मेरा नृत्य ॥९

'रामकृष्ण निलयम्' हुआ तेरे घर का नाम ।
मेरे मन ! हो जा स्वयं रामकृष्ण का धाम ॥१०

ठाकुर ! मुझे भी यह कहिए

—श्रीरामकृष्ण की आराधिका श्रीमती सुदेश
(अम्बाला कैण्ट, हरियाणा)

आपने श्री'म' से कहा था :

'भगवान न करे : तुम संसार का परित्याग क्यों करोगे ? अपने गुरु को पाकर क्या तुम स्वयं को धन्य नहीं मानते ? उनकी कृपा से जो समस्त कल्पनाओं और सपनों से परे हैं, उन्हें भी आसानी से प्राप्त किया जा सकता है !'

हे ठाकुर ! कृपा कीजिए और मुझे भी यह कहिए ।

आपने बाबूराम से यह कहा था :

'तुम मुझसे क्या माँग सकते हो ? जो कुछ भी मेरा है, क्या पहले से ही तुम्हारा नहीं है ? हाँ, जो कुछ भी मैंने आध्यात्मिक अनुभूति के रूप में अर्जित किया है वह सब तुम्हीं लोगों के लिए है। इसलिए भिक्षाटन का भाव छोड़ो । यह दूरी बनाकर अलगाव करता है। बल्कि मेरे साथ एक आत्मीय सम्बन्ध बना लो और मेरे सारे खजाने की चाभी ले लो ।'

हे दयामय ठाकुर ! कृपाकर मुझे भी यह कहिए ।

आपने जोगीन्द्रनाथ से यह कहा :

'शिष्य का हाथ पकड़कर उन्होंने कहा : 'तुमने विवाह कर लिया तो क्या हुआ ? क्या मैंने भी विवाह नहीं किया है ?'·····अपनी छाती का स्पर्श करते हुए उन्होंने कहा : 'यदि यह (अर्थात् वे स्वयं) प्रसन्न है, तो लाखों विवाह तुम्हारी कोई क्षति नहीं कर सकते । अगर तुम गृहस्थ का जीवन जीना चाहते हो तो एक दिन अपनी स्त्री को यहां ले आओ और मैं उसे तुम्हारी आध्यात्मिक प्रगति की वास्तविक सहगामिनी बना दूँगा । लेकिन अगर तुम संन्यासी का जीवन जीना चाहते हो तब मैं तुम्हारी सांसारिक आसक्तियों को खा जाऊँगा ।'

प्रिय ठाकुर ! मुझे भी यह कहिए ।

आपने मास्टर से यह कहा : (द्वितीय भाग, पृ० २२४)

श्रीरामकृष्ण—एक दिन मैंने सोचा कि सब के यहाँ एक-एक बार जाऊँगा—(तुम्हारे यहाँ भी)—क्यों ?

मास्टर—'जी हाँ, बड़ी कृपा होगी ।'

ठाकुर ! क्या आप मुझे भी यह नहीं कहेंगे ?

आपने अधर सेन के प्रति कहा (द्वितीय भाग, पृ० ४०८)

'अधर सेन—अगर काम घट जाता'—

प्रार्थना करती हूँ, मुझे भी यह कहिए।

आपने नरेन्द्र को कहा था (तृतीय भाग पृ० २६)

……श्रीराकृष्ण कमरे में जाकर नरेन्द्र के पास खड़े हुए और बोले, "मैं आया हूँ।"

मुझे भी यह कहिए।

आपने मास्टर महाशय से कहा था—(द्वितीय भाग पृ० १९७-९८)

श्रीरामकृष्ण—'……तुम्हारी भी इच्छा स्वयं के लिए कोई धन संचय करने की नहीं है—ठीक है—तुम्हें तो केवल अपने कुटुम्ब के निर्वाह के लिए ही चिन्ता है—नहीं तो सचमुच वे और कहाँ जायँ ?'

मणि—'यदि कोई उनकी जिम्मेदारी ले ले तो मैं निश्चिन्त हो जाऊँ।'

श्रीरामकृष्ण—'……जैसे जिसके संस्कार। तुम्हारा कुछ कर्म अभी बाकी है। उतना हो जाने पर शान्ति होगी, तब तुम्हें वह छोड़ देगा।'

हे दयानिधान ठाकुर! मुझे भी यह कहिए। मुझे भी यह आश्वासन दीजिए।

सच्चा गुरु

एक थे सेठ। वे गुरु की तलाश में थे। पर चाहते ऐसा थे, जो पहुँचा हुआ ज्ञानी हो। बहुतों को जाँचा-परखा पर कोई खरा नहीं निकला। तलाश का अन्त न हुआ। सेठानी ने कहा—"यह काम मेरे ऊपर छोड़ दें। जो मिला करे, उसे मेरे पास भेज दिया करें।" सेठजी सहमत हो गये। एक झंझट टली। सेठानी ने पिंजड़े में एक कौआ पाला। जो भी महात्मा आता, उससे यही कहती—'देखिये मेरा पाला कबूतर अच्छा है न ?" सन्त लोग आते, कबूतर कहाँ है ? कैसा है ? कहते। जब सेठानी अपनी बात पर अड़ी ही रहती तो वे क्रोध में भरकर उल्टी-सीधी बातें कहते और वापस चले जाते। यही क्रम चलता रहा। बहुतेरे आये और सभी चले गये। कोई खरा उतरा नहीं। जो आवेशग्रस्त हो चलें, वे सन्त कैसे ? जो सन्त नहीं वह गुरु योग्य कहाँ ?

एक दिन एक वयोवृद्ध सन्त आये। सत्कार करने के उपरान्त सेठानी ने वही कौआ-कबूतर का सिलसिला चला दिया। यह सन्त आवेश में नहीं आये। कौए और कबूतर का अन्तर समझाते रहे। न समझ पाने पर इतना ही कहकर चले गये,—"बेटे हठ मत करना। तथ्य का पता लगाना। कोई सर्वज्ञ नहीं। हमसे-आपसे भूल हो सकती है। सत्य को समझने के लिए मन के द्वार खुले रखना चाहिए।" वे हँसते हुए चल दिए। न क्रोध था, न आवेश, न मानापमान का भाव। सेठानी ने सन्त को द्वार से वापस लौटा लिया। नमन किया और कहा—"जैसा चाहती थी, वैसा आपको पाया, कृपया हमारे परिवार के गुरु का उत्तरदायित्व ग्रहण करें।" ❑

स्वामी विवेकानन्द की स्मृतियाँ (३)

—स्वामी सदाशिवानन्दजी
अनुवादक—श्रीरामकुमार गौड़, (वाराणसी)

एक वैद्य प्राय: स्वामीजी को देखने आता था। देश में नये रूप में विकसित धर्मशास्त्र की एक विशेष प्रणाली की ओर उसका बहुत झुकाव था। वह इसके संस्थापक और देश के लिए की जा रही इसकी महान् सेवाओं के बारे में बताने लगा और दृढ़तापूर्वक कहने लगा कि भारत में केवल वही एकमात्र यथार्थ और तर्कसंगत संस्था है। स्वामीजी बिना कोई टिप्पणी या विरोध किए सब सुनते रहे जिससे वैद्य का इस प्रणाली के बारे में अधिक कट्टरतापूर्वक बोलने का साहस बढ़ गया।

क्रमश: स्वामीजी के मुखमण्डल में परिवर्तन हुआ और उनकी देह दृढ़ तथा निश्चल हो गई। अचानक उनके मुख से शब्दों का प्रवाह फूट पड़ा। उनका स्वर गम्भीर, प्रतिध्वनि युक्त और प्राय: अधिनायकवादी था। अब वैद्य से एक नया व्यक्तित्व बोल रहा था और वैद्य विस्मित होकर सब सुनता जा रहा था, "इस देश के प्रत्येक क्षेत्र में विदेशी लोग शिक्षक हैं। केवल धर्म बचा है परन्तु तुम वहाँ भी उनको प्रथम स्थान देना चाहते हो। तुमने यूरोप को अपना गुरु बना लिया है और तुम उसके सम्मोहित गुलाम बन गए हो। क्या तुम सोचते हो कि भारत की इतनी अधोगति हो गई है कि तुम्हें धार्मिक उपदेशकों का भी आयात करना चाहिए। क्या यह कोई गर्व की बात है या तुम्हें उनको अपना कहते हुए शर्म आनी चाहिए? मैं यहाँ वक्तृता और भाषण करने नहीं आया हूँ। मैं बीमार हूँ और शान्ति तथा विश्राम चाहता हूँ। स्वामीजी ने अपने स्वर को और मुखर किया और चमकीले गुलाबी नेत्रों को अपने आलोचक पर गड़ाते हुए बोले, "यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो आज रात को ही तुम्हारे इस प्रिय मत के संस्थापक को यहाँ बुला सकता हूँ और पूरी काशी मेरे चरणों में गिर जाएगी किन्तु मैं दैवी शक्तियों का इस प्रकार अनावश्यक प्रयोग नहीं करना चाहता। इसीलिए मैंने ऐसा कुछ भी नहीं किया।" कुछ ही समय पूर्व जो वैद्य स्वामीजी को आध्यात्मिक क्षेत्र में सामान्य स्तर से ऊँचा नहीं मानता था, वही स्वामीजी का संरक्षण प्राप्त करते हुए बोला, "अच्छा, महाराज, अमुक-अमुक व्यक्ति आपके पास नहीं आए—यह निस्सन्देश दुख की बात है।" स्वामीजी इससे थोड़ा अप्रसन्न हो गए थे। इसीलिए वैद्य ने अपनी भूल को सुधार लिया।

वैद्य ने प्रकरण बदल दिया और स्वामीजी क्षणभर में ही पुन: शान्त हो गए। पुन: हमलोगों ने प्रशान्त संन्यासी को अपने चारों ओर शान्ति बिखेरते हुए देखा, मानो कोई बात ही नहीं हुई थी।

सुख्यात देशभक्त श्री केलकर उन दिनों वाराणसी में थे। एक दिन सायंकाल वे स्वामीजी से मिलने आए। स्वामीजी बीमार होने के कारण बिस्तर पर लेटे हुए थे। श्री केलकर ने स्वामीजी के प्रति उचित सम्मान प्रदर्शित किया, जैसा कोई अपने गुरु या महान संत के प्रति करता है। फिर वे चटाई बिछे हुए फर्श पर एक दरी पर बैठ गए।

वार्तालाप अंग्रेजी में हुआ। हम लोग कुछ दूरी पर बैठे और वहाँ से सब कुछ सुनाई नहीं पड़ रहा था परन्तु हमलोगों ने स्वामीजी को लेटे हुए हल्के स्वर में बातचीत करते देखा। शीघ्र ही वे उत्साहित हो गए तथा चारपाई पर बैठ गए और एक स्वस्थ व्यक्ति की तरह बातचीत करने लगे। फिर वे अत्यधिक भावुक हो गए और उनके नेत्र विशाल तथा होंठ संकुचित एवं कठोर होकर कांपने लगे। भौंहों के संकुचन और मुखमंडल की लालिमा के कारण उनके विशाल मस्तक पर अनेक सिकुड़नें पड़ गईं। उनका मधुर, सुरीला स्वर अधिकाधिक गुंजायमान और तीव्र हो गया तथा उनकी प्रसुप्त शक्तियाँ पूर्णतया जागृत हो गईं। श्री केलकर के लिए यह एक बिलकुल नया अनुभव था। वे इस रूपान्तरण पर किसी आश्चर्यचकित और सम्मोहित व्यक्ति की भांति बैठे रहे क्योंकि स्वामीजी और भी अधिक भाव-पूर्ण वक्तृता देने लगे।

चर्चा का विषय था—भारत और उसकी दुर्दशा। राजनीति, सामाजिक सुधार तथा अनेक अन्य पहलुओं पर भी चर्चा हुई। स्वामीजी गर्जना के स्वर में बोले, "इस अधोगति और अत्यधिक निर्धनता में अधिक समय तक रहते हुए भारत का क्या हित है। प्रत्येक क्षण भारतवर्ष नरक का कष्ट भोग रहा है। न भोजन और न वस्त्र; अपमान और दुर्गति ही उसकी नियति बन गए हैं। भारत सांस ले रहा है—यही उसके जीवन का लक्षण है। क्रमश: और निश्चित ही सचमुच वह नरक की अग्नि में भस्म हो रहा है। क्या इससे बेहतर यह नहीं था कि वह पृथ्वी पर से समाप्त ही हो जाय।

वे इसी लहजे में बोलते रहे और हमलोगों ने उन्हें हाँफते हुए बातें करते सुना। भारत की कल्याणकामना के लिए भयानक कष्ट भोग रहे स्वामीजी को देखकर हमलोग विस्मित रह गए। वे एक सच्चे देशभक्त और सच्चे साधु थे। क्या उन्होंने यह नहीं कहा, "गरीबों के लिए जिसका हृदय व्यथित और पीड़ित है, मैं उसी को महात्मा कहता हूँ।" उनके संदर्भ में यह अक्षरश: सत्य था क्योंकि उनके द्वारा अनुभूत कष्ट इतना मर्मस्पर्शी था कि वे अपना संतुलन खो बैठे और अपनी अस्वस्थता को भी भूल गए। उन्होंने श्री केलकर को बताया कि केवल राजनीति तथा विदेशों का अनुकरण करने से सुधार-आंदोलनों का कोई सुपरिणाम नहीं निकलेगा और न ही दूसरे देशों की हृदयहीन विदेशी राजनीति हमारी सहायता करेगी। प्राचीन परम्पराओं का अनुसरण करते हुए आभ्यंतर का प्रवाहपूर्ण विकास ही भारत की उन्नति कर सकेगा। उन्होंने अन्तिम बात पर बहुत जोर दिया तथा श्री केलकर से इसका विस्तृत विवेचन किया। उन्होंने यह भी कहा कि भारत में किसी अन्य परीक्षण या प्रयोग की अपेक्षा धर्म के माध्यम से सभी प्रकार के सामाजिक सुधार और अन्य विकास करना अधिक सुगम था। धर्म से अलग हटकर की गई राजनीति और समाज सुधार से भारत को कोई चिरस्थाई और प्रभावी लाभ नहीं मिलेगा। ऐसा लगा कि श्री केलकर इन बातों से बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने आदरपूर्वक हाथ जोड़कर विदा लिया।

स्वामीजी का व्यक्तित्व बहुत प्रभावशाली था। एक ओर वे अपने पूरे उत्साह और ताकत से किसी असत्य या अन्याय पर झपटकर आक्रमण करते थे तथा बुराई को जड़ से उखाड़ने का प्रयत्न करते थे तो दूसरी ओर उनका हृदय बहुत ही कोमल और संवेदनशील था। एक बार उन्होंने कहा, "क्या यह सम्भव है कि तुम्हारी उँगली ताजे दुहे गए दूध के कोमल बुलबुलों से कट

जाय ? मैं कहता हूँ कि यह भी सम्भव हो सकता है, किन्तु श्रीमती राधा का हृदय इससे भी अधिक कोमल था।"

एक बार वे सुबह का नाश्ता करने के बाद कुछ अन्य लोगों के साथ पहाड़ियों के सौन्दर्य का आनन्द लेते हुए दार्जिलिंग में एक सड़क पर टहल रहे थे। अचानक उन्होंने भावदर्शन में एक भूटिया स्त्री को देखा जो अपनी पीठ पर भारी बोझ ले जाते समय फिसलकर गिरने से कुछ चोटिल हो गई थी। स्वामीजी के साथ टहल रहे अन्य लोगों ने इस घटना को बिलकुल देखा ही नहीं। उनके सेवक कम उम्र के युवक थे और अनुभवशून्य थे। वे स्वामीजी की समाधि की अवस्था में उनके भावों से अनभिज्ञ थे। स्वामीजी ने कुछ दूरी पर अपनी दृष्टि गड़ा दी तथा वे एक इंच भी आगे नहीं बढ़ सके। उनका चेहरा पीला पड़ गया और वे कष्ट में चिल्ला उठे, "ओह ! मुझे यहाँ बड़ा कष्ट हो रहा है और मैं किंचित भी आगे नहीं चल सकता।" किसी ने पूछा, "स्वामीजी, आपको कहाँ कष्ट अनुभव हो रहा है ?" उन्होंने अपने बगल में इशारा किया और कहा, "यहाँ, क्या तुमने उस स्त्री को गिरते हुए नहीं देखा ?" युवक कुछ समझ नहीं सका और उसने सोचा कि यह तो बड़ा विचित्र है कि स्वामीजी को अकारण ही कष्ट अनुभव हुआ; किन्तु किसी ने भी कुछ कहने का साहस नहीं किया। समय बीतने पर उन्हें इस घटना का महत्त्व तब पता चला जब वे यह समझ गए कि मानव-मानव के बीच बड़ा ही सहानुभूतिपूर्ण सम्बन्ध विद्यमान है और स्वामीजी जैसे देवपुरुषों के साथ तो मनुष्य का अक्षुण्ण सम्बन्ध है जो दूर रहकर भी दूसरों की भावनाओं का दर्शन अनुभव करते है।

स्वामी विवेकानन्दजी के वाराणसी आगमन के लगभग तीन वर्ष पूर्व से ही चारु बाबू और अन्य लोगों की सहायता से हमलोगों ने वाराणसी में एक सोसायटी की शुरुआत की थी। हमलोगों का उद्देश्य था स्वामीजी और श्रीरामकृष्णदेव से संबंधित साहित्य का अनुशीलन करना तथा इस अध्ययन पर विचार-विमर्श, प्रवचन एवं कर्मयोग पर विशेष बल देते हुए कार्य करना। हमलोगों में से कुछ युवक ध्यान, पूजा; शुभ आदर्शों के अनुरूप अपने जीवन को ढालने तथा साथ ही निर्धनों एवं दीन-दुखियों की सेवा करने के उद्देश्य से एकत्रित हुए। धीरे-धीरे वाराणसी के अनेक सम्भ्रान्त लोग इसमें शामिल हो गए और हमलोगों का कार्य फैलता गया। हमलोगों ने इसका नाम 'निर्धन राहत संस्था' रखा।

दो वर्षों तक हम लोग संघर्ष करते रहे और तीसरे वर्ष स्वामीजी के व्यावहारिक वेदान्त से प्रेरित होकर हमने इसको पुनर्गठित करके इसका नाम 'दरिद्र नारायण सेवा समिति' रखा। इस सेवा कार्य के एक वर्ष बाद स्वामीजी वाराणसी आए और हमलोगों को विनम्र शिष्यों के रूप में स्वीकार किया। स्वामीजी ने चारु बाबू में अपनी शक्ति संचारित की और उन्हें अपनी ऊर्जा को विशेषत: इस तरह की सेवा के लिए समर्पित करने को कहा। उन्होंने हमलोगों से अनेक बार कहा, "तुम लोगों को यह सोचना चाहिए कि गरीब जनता से प्राप्त एक-एक पैसा तुम्हारे रक्त की बूंद है। राहत समितियों द्वारा तुम गरीबों को कैसे राहत दे सकते हो ? दम्भ और पाखण्ड छोड़ दो। इसका नाम श्रीरामकृष्ण सेवाश्रम रखो और इसके पूरे प्रबन्ध के लिए इसे (रामकृष्ण) मिशन को सौंप दो। हमलोगों ने वैसा ही किया। इस प्रकार सेवाश्रम स्थापित हो गया।

अनेक वयोवृद्ध हिन्दुओं में मृत्युपर्यन्त वाराणसी में ही रहने की प्रथा है। पंडित शिवानन्द नाम के बंगाल के एक छोटे जमींदार जो संस्कृत दर्शन के बड़े विद्वान् तथा व्यावहारिक साधना में काफी आगे बढ़ चुके थे, इसी प्रथानुसार वाराणसी में रहते थे। विशाल हृदय तथा व्यापक दृष्टि सम्पन्न थे। अपने वाराणसी आगमन के प्रारम्भ से ही वे हमलोगों से सुपरिचित थे और वे हमारी 'निर्धन राहत संस्था' की शुरुआत से ही इसके संरक्षक हो गए।

वे प्राय: स्वामीजी के उपदेशों के पक्ष में शास्त्रों का उद्धरण देते थे। उन्होंने कहा, "मैं पवित्र नगरी वाराणसी को न छोड़ने का व्रत ले चुका हूँ और स्वामीजी कलकत्ते में रहते हैं। क्या वे कम-से-कम एक बार यहाँ नहीं आएँगे?" स्वामीजी १९०२ के प्रारम्भ में यहाँ आए और पंडितजी उन्हें देखने गए। पहली भेंट में ही वे प्रसन्नता और हर्ष से उल्लसित हो गए तथा स्वामीजी उनके परम मित्र हो गए। प्राय: उन लोगों की बातचीत का विषय श्रीरामकृष्ण और उनका आश्चर्यजनक आध्यात्मिक जीवन होता था। श्रीरामकृष्णदेव के आध्यात्मिक भावों के बारे में बोलते हुए स्वामीजी अनजाने ही उन्हें प्रकट कर देते थे।

कभी-कभी पंडितजी शास्त्रों के विभिन्न विषयों पर चर्चा करते थे। स्वामीजी प्राय: अपने प्रिय विषय-कर्म और सेवा पर आ जाते थे। उन्होंने रूढ़िवादी हिन्दुओं पर बहुत अधिक बल देनेवाले व वाराणसी के पंडितों के एक वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाले इस कट्टर ब्राह्मण को अपने विचारों से बहुत अधिक प्रभावित किया।

पंडितजी के पास कलकत्ते से संस्कृत में छपा हुआ एक सम्मान पत्र था। किन्तु वे जब भी स्वामीजी का दर्शन करने जाते तो अतिशय भावविह्वल होने के कारण उसे साथ ले जाना भूल जाते। एक दिन जब वे उसे लेकर स्वामीजी का दर्शन करने जा रहे थे, तभी चारु बाबू तथा मैं भी उनके साथ चल पड़ा। हम लोगों ने उनसे पूछा, "पंडितजी, स्वामीजी के बारे में आपका क्या विचार है?" उन्होंने तुरन्त उत्तर दिया, "वे एक सच्चे योगी हैं और इसीलिए मैं प्रतिदिन उनका दर्शन करने जाता हूँ। मैं पूरी तरह आश्वस्त हूँ कि उनके जिन व्याख्यानों और अन्य उपदेशों ने उन्हें इतना सुख्यात बनाया है, वे आत्मा को उन्नत करने वाली उनकी शक्ति के सम्मुख गौण हैं। उनके भीतर जो ईश्वरीय शक्ति क्रीड़ा करती है, उसका अत्यल्प अंश ही अभिव्यक्त हो रहा है। उनकी महानता और सामर्थ्य का निर्णय करना असम्भव है—वे अपार समुद्र जैसे प्रतीत होते हैं।

हमलोगों ने रास्ते में एक दूसरी गाड़ी में स्वामीजी को भिनगा के महाराज के महल की तरफ जाते हुए देखा। स्वामीजी के साथ स्वामी शिवानन्द, स्वामी गोविन्दानन्द तथा एक अन्य स्वामीजी थे। दोनों गाड़ियाँ रुक गईं और पंडितजी ने थोड़ी घबराहट के साथ वह सम्मान-पत्र स्वामीजी को दिया। स्वामीजी ने एक नजर में ही उसके अभिप्राय को समझ लिया और विनम्रता प्रकट करते हुए बोले, "पंडितजी महाराज, आपने यह क्या किया! मैं एक अतिसाधारण व्यक्ति हूँ। यह उच्च प्रशंसा और स्तुति मेरे लिए नहीं है। मैंने तो कुछ नहीं किया है। यह तो केवल प्रभु की इच्छा है और वे अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए एक साधारण व्यक्ति को भी अपना यंत्र बना सकते हैं।

विवेक चूड़ामणि

—ब्रह्मलीन स्वामी वेदान्तानन्द
अनुवाददक—स्वामी अमृतानन्द, वाराणसी

अविवेकी व्यक्ति को रक्त पुष्प सन्निहित स्फटिक रक्तवर्ण ही प्रतीत होगा। विवेकी व्यक्ति लाल रंग को स्फटिक में अध्यस्त जानकर स्फटिक को स्वच्छ ही अनुभव करेगा। इस प्रकार आत्म अनात्म विचार द्वारा जिसे आत्मस्वरूप की दृढ़ प्रतीति होगी वह फिर अनात्मक वस्तु को अपना स्वरूप मानकर भ्रमित नहीं होगा। 'मैं ब्राह्मण हूँ', 'मैं सुपुरुष हूँ', 'मैं विद्वान हूँ', मैं कर्त्ता हूँ' इत्यादि अभिमान उसे न होगा।

लोकानुवर्तनं त्यक्त्वा त्यक्त्वा देहानुवर्तनम्।
शास्त्रानुवर्तनं त्यक्त्वा स्वाध्यासापनयं कुरु ॥२७०

लौकिक एवं सामाजिक शिष्टाचार आदि मे उत्साह शून्य होकर, देह सुख हेतु चेष्टा का त्यागकर (मात्र देह धारण के लिए प्रयोजनीय अन्नवस्त्र के अतिरिक्त किसी भी वस्तु की आकांक्षा किये बिना) एवं शास्त्र के प्रति पांडित्य-प्रकाशन की चेष्टा त्याग कर अध्यास दूर करने हेतु प्रत्यनशील हो।

लोकोक्ति को रोका नहीं जा सकता एवं मनुष्य को कभी खुश नहीं किया जा सकता है। दूसरों का ख्याल रखने पर अध्यास दूर करना सम्भव नहीं। इसी कारण मुमुक्षु के लोकानुवर्तन निषेध है।

शास्त्रानुवर्तन त्याग से अभिप्राय आत्मविचार के अनुकूल शास्त्र चर्चा का निषेध करना नहीं है वरन् बहुशास्त्र पाठ एवं तर्क विचार आत्मनिष्ठ होने में बाधक होने के कारण वर्जित है।

'स्वाध्यास'—अहंकारादि में 'मैं' एवं देह इन्द्रियादि में तथा स्त्री पुत्र गृहादि सम्पत्ति में 'मेरा' का भ्रम समझना होगा।

लोकवासनया जन्तोः शास्त्रवासनयापि च।
देहवासनया ज्ञानं यथावन्नैव जायते ॥ २७१

लोगों को खुश करने की तथा लोकप्रिय होने की चेष्टा, शास्त्र में पांडित्य अर्जन एवं उसे दिखाने की चेष्टा तथा देह की सौन्दर्य-वृद्धि की तथा भोग सुख की इच्छा रहने पर आत्मज्ञान उत्पन्न नहीं होता है।

संसार कारागृह मोक्षमिच्छोरयोमयं
पादनिबद्धशृङ्खलम्।
वदन्ति तज्ज्ञाः पटुवासनात्रयं योऽस्माद्विमुक्तः
समुपैति मुक्तिम् ॥२७२

संसार रूप कारागार से मुक्तिलाभ के इच्छुक साधक के लिए ये तीनों वासनाएँ लौहनिर्मित पैरों में बँधी बेड़ियों के समान है—आत्मतत्वज्ञ व्यक्तिगण ऐसा ही कहते हैं। जो इन तीनों वासनाओं के वशीभूत नहीं है वे जीवन्मुक्ति को प्राप्त होते हैं।

जलादि सम्पर्क वशात्प्रभूत
दुर्गन्धवृतागरुदिव्यवासना।
सङ्घर्षणेनैव विभाति सम्यग्विधूयमाने
सति बाह्यगन्धे ॥२७३

जल आदि के संगदोष से जो अगरुचन्दन आदि ऊपर से अत्यन्त दुर्गन्धमय प्रतीत होता है, परन्तु घर्षण के फलस्वरूप जब जलादि से उत्पन्न

दुर्गन्ध चली जाती है तब उसी चन्दन से दिव्य सुगन्ध प्रकट होती है।

अन्तःश्रितानन्तदुरन्तवासना धूलीविलिप्ता
परमात्मवासना ।
प्रज्ञातिसङ्घर्षणतो विशुद्धा प्रतीयते
चन्दनगन्धवत्स्फुटा ॥२७४

जीव में स्थित अनन्य एवं दुर्दम उक्त वासनात्रय रूप धूलि द्वारा आत्मा का शुद्ध स्वरूप आवृत रहता है। निरन्तर आत्मविचार अभ्यास के द्वारा (जब वासनात्रय रूपी आवरण हटता है तब) घिसे हुए चन्दन के सौरभ की भांति स्वाभाविक रूप में (आनन्दमय) आत्म स्वरूप की अभिव्यक्ति होती है। (२७४)

वासनाओं के नाश होने पर ही आत्म स्वरूप की उपलब्धि होती है।

अनात्मवासनाजालैस्तिरोम्तात्मवासना ।
नित्यात्मनिष्ठया तेषां नाशे भाति
स्वयं स्फुटम् ॥२७५

देहादि पोषण रूप वासना समूहों द्वारा आत्म स्वरूप का प्रकाश आवृत रहता है। अहर्निश आत्मचिन्तन के फलस्वरूप सभी प्रकार के भोग वासनाएँ नष्ट हो जाने पर आत्म स्वरूप पूर्ण रूप से प्रकाशित हो जाता है। (२७५)

यथा यथा प्रत्यगवस्थितं मनस्तथा तथा
मुञ्चतिबाह्यवासनाम्ः ।
निःशेषमोक्षे सति वासनानामात्मानुभूतिः
प्रतिबन्धशून्या ॥२७६

मन जैसे-जैसे साक्षी स्वरूप आत्मा में स्थित होता जाता है, वैसे-वैसे उसी अनुपात में विषय भोग की वासनाओं को त्याग करता जाता है। वासना समूहों का पूर्ण रूप से नाश होने पर बाधा रहित भाव से आत्म स्वरूप की अनुभूति होती है।(२७६)

स्वात्मन्येव सदा स्थित्वा मनो नश्यति
योगिनः ।
वासनानां क्षयश्चातः स्वाध्यासापनयं
कुरु ॥२७७

आत्म स्वरूप में सर्वदा निष्ठा रहने पर साधक को मनोनाश की उपलब्धि होती है (मन में फिर संकल्प विकल्प का उदय नहीं होता।) संकल्प त्याग के फलस्वरूप वासना क्षय होता है। अतः देहादि में अहंबोध की निवृत्ति का प्रयत्न करो। (२७७)

वासना समूहों का उदय मन में होता है; मनोनाश होने पर वासना समूह भी नष्ट हो जाते हैं।

सर्व संकल्प संन्यासी योगारुढ़स्तदोच्यते ॥
(गीता ६/४)

तमो द्वाभ्यां रजः सत्त्वात्सत्त्वं
शुद्धेन नश्यति ।
तस्मात्सत्त्वमवष्टभ्य स्वाध्यासापनयं
कुरु ॥२७८

तमोगुण रजः एवं सत्वगुण द्वारा, रजोगुण सत्वगुण द्वारा एवं सत्वगुण शुद्ध सत्वगुण द्वारा नष्ट को प्राप्त होता है। अतः सत्वगुण को आश्रय कर अध्यास-नाश का प्रयत्न करो।(२७८)

गीता का चौदहवाँ अध्याय दृष्टव्य है।

तमोगुण के प्रभाव से जीव प्रमाद-आलस्य एवं निद्रा द्वारा वशीभूत होता है। प्रमादी एवं आलसी व्यक्ति कोई भी शुभकर्म करने में समर्थ नहीं होता है। रजोगुण के प्रभाव से क्रियाशील तथा सत्वगुण से उत्पन्न शुभवासना द्वारा परिचालित होने पर तमोगुण के प्रभाव से निष्कृति प्राप्त होती है। सत्वगुण जब विशेष रूप से प्रकाशित होता है तब रजोगुण उद्भूत कर्म चांचल्य नष्ट हो जाता है। सत्वगुण दो प्रकार के हैं—मलिनसत्व एवं

शुद्धसत्व। मलिनसत्व जीव को सुख एवं ज्ञान में आसक्त कर बन्धन में डालता है। शुद्ध सत्व मलिनसत्व को नष्ट कर पुनः गुण रूप में वर्तमान न रहकर, ब्रह्माकारा वृत्ति के रूप में परिणित हो जाता है।

प्रारब्धं पुष्यति वपुरिति निश्चित्य निश्चलः।
धैर्यमालम्ब्य यत्नेन स्वाध्यासापनयं
कुरु ॥२७९

अतीत कर्मों के फलस्वरूप इस देह का पोषण हो रहा है (एवं होता रहेगा) यह दृढ़ भाव से धारण कर शरीर पोषणादि विषय में उत्साह त्यागकर धैर्य एवं यत्नपूर्वक [ब्रह्मनिष्ठा अभ्यास द्वारा] अध्यास दूर करो। (२७९)

नाहं जीवः परं ब्रह्मेत्यतद्व्यावृत्तिपूर्वकम्।
वासनावेगतः प्राप्तस्वाध्यासापनयं कुरु ॥२८०

'मैं जीव नहीं हूँ; मैं परमब्रह्म हूँ' इस प्रकार विचार की सहायता से ब्रह्म भिन्न कार्यकारण रूप सभी अनात्म वस्तु को अस्वीकार कर अतीत संस्कार से उत्पन्न आत्मा में देह धर्म के अभिमान का त्याग करो।

श्रुत्या युक्त्या स्वानुभूत्या ज्ञात्वा
सार्वात्म्यमात्मनः।
क्वचिदाभासतः प्राप्तस्वाध्यासापनयं
कुरु ॥२८१

श्रुतिवाक्य, विचार एवं अपने अनुभव इन तीन उपायों द्वारा आत्मा की सर्वस्वरूपता को जानकर (जाग्रत एवं स्वप्न में) किसी समय आभासमात्र रूप में प्रकाशित अध्यास के निराकरण में तत्पर रहो।(२८१)

आत्मा की सर्वस्वरूपता श्रुति में अनेक स्थानों में वर्णित है।

मु० उ० २।२।११ में दृष्टव्य है।

'सर्वम् ह्येतद् ब्रह्म, अयमात्मा ब्रह्म'
मा० उ० २

'सर्वम् खल्विदं ब्रह्म।' छा० उ०, ३।१४।१

दृश्य पदार्थ समूह को परिछिन्न एवं आत्मा से भिन्न देखने के फलस्वरूप जीव क्षुद्र विषयों तुच्छ आनन्द के प्रति धावित होकर स्वयं को ही क्षुद्र कर बैठता है। गुणत्रय के प्रभाव से मुक्त होने पर उसकी क्षुद्रता का नाश होता है एवं वह जगत को ब्रह्ममय अनुभव करने लगता है।

अनादानविमर्गाभ्यामीपन्नास्ति क्रिया मुनेः।
तदेकनिष्ठया नित्यं स्वाध्यासापनयं
कुरु ॥२८२

ग्रहण बुद्धि एवं त्याग बुद्धि के अभाव हेतु मननशील विद्वान व्यक्ति के लिए कोई भी कर्म सम्भव नहीं है। अतः सर्वदा ब्रह्मनिष्ठ रहकर अध्यास को दूर करो।

जब तक कामना रहती है तब तक बिना कर्म के कोई क्षणकाल भी स्थिर नहीं रह सकता है। मनुष्य कामना के वश में कर्म करते रहने पर अध्यास से निष्कृति नहीं पा सकता है। स्वाभाविक श्वास-प्रश्वास क्रिया कोई संकल्प करके नहीं करता है। साधक की अन्यान्य दैहिक क्रिया जब श्वास-प्रश्वास की भांति संकल्प विकल्प रहित ही होने लगता है, तब वह कर्मबन्धन से मुक्त हो ब्राह्मी स्थिति को प्राप्त होता है। तब वह 'न द्वेष्टि सम्प्रवृत्तानि न निवृत्तानि कांक्षति।' 'गुणत्रय का कार्य प्रकाशित होने पर वह द्वेष नहीं करता, अथवा उनके कार्यों की निवृत्ति होने पर उन सबको प्रकाशित करने हेतु उत्सुक नहीं होता है। गी० १४।२२

तत्त्वमस्यादिवाक्योत्थ ब्रह्मात्मैकत्व बोधतः।
ब्रह्मण्यात्मत्वदार्ढ्याय स्वाध्यासापनयं
कुरु ॥२८३

'तत्वमसि' आदि महावाक्यों के श्रवण के फलस्वरूप ब्रह्म के जीव की जो एकत्वबोध की उत्पत्ति होती है, उस बोध की सहायता से मन से सभी विपरीत भावयाओं की निवृत्ति करो।

अहंभावस्य देहेऽस्मिन्: निःशेषविलयावधि।
सावधानेन युक्तात्मा स्वाध्यासापनयं
कुरु ॥२८४

जब तक इस देह में 'मैं-बोध' का पूर्ण रूप से नाश नहीं हो जाता है तब तक विषय चिन्तन त्यागकर विशेष यत्नपूर्वक अध्यास निवारण में लगे रहो। (२८४)

प्रतीतिर्जीवजगतोः स्वप्नवद्भाति यावता।
तावन्निरंतरं विद्वन्स्वाध्यासापनयं कुरु ॥२८५

जब तक 'मैं जीव हूँ एवं मेरे बाहर यह जगत है।' इस प्रकार का भेदबोध स्वप्नदृष्ट विषय समूह की भांति आभास रूप मैं भी अनुभूत होती रहती है, तब तक निरन्तर अध्यास निवारण में तत्पर रहो। भेदबोध कभी-कभी थोड़ा आने में क्या क्षति है, ऐसा सोचने से नहीं चलेगा।

निद्राया लोकवार्तायाः शब्दादेरपि विस्मृतेः।
क्वचिन्नावसरं दत्त्वा चिन्तयात्मानमात्मनि ॥२८६

निद्रा, विषय सम्बन्धी लोकवार्ता, शब्द स्पर्शादि विषय, इन आत्मविस्मृति के कारण समूह को (जो तुम्हें आत्मचिन्तन से विमुख करते हैं) अल्पमात्र भी मौका न देकर सर्वदा अपने अन्तःकरण में शुद्ध-आत्मस्वरुप का ध्यान करो। (२८६)

निद्रा तामसी वृत्ति है, यह समाधि के प्रतिकूल है। दूसरों के विषय में समालोचना करने से नाना प्रकार की वासना उत्पन्न होती है एवं चित्त विक्षिप्त होता है। शब्द स्पर्शादि कभी अनुकूल अथवा प्रतिकूल रूप में प्रकाशित हो चित्तविक्षेप का कारण होता है। इस कारण इन तीनों के त्याग का उपदेश दिया गया।

मातापित्रोर्मलोद्भूतं मलमांसमयं वपुः।
त्यक्त्वा चाण्डालवद्दूरं ब्रह्मीभूय
कृतीभव ॥२८७

माता-पिता के शोणित-शुक्र के संयोग से उत्पन्न मलमांसमय शरीर को चाण्डाल की भांति अस्पृश्य जानकर दूर से ही त्याग दो (अर्थात् शरीर में आत्मभिमान त्यागकर ब्रह्म के साथ अभेदबोध प्राप्ति के फलस्वरूप धन्य हो जाओ। २८७ (क्रमशः)

सामाचार

श्रीरामकृष्ण विवेकानन्द आश्रम मुजफ्फरपुर द्वारा नेत्रदान शिविर का आयोजन किया गया (माह दिसम्बर '९६ एवं जनवरी १९९७ में दो सौ से अधिक नेत्र रोगियों की सफल नेत्र चिकित्सा की गई। आश्रम द्वारा रोगियों को निःशुल्क भोजन, दवा एवं चश्मा प्रदान किया गया।

बातें नहीं काम करो

युग-प्रवर्तक साहित्यकार वाल्टेयर एक चौराहे पर आकर खड़ा ही हुआ था कि कुछ नवयुवकों ने उसे पहचान लिया। समाज में तथा राष्ट्र में एक नवीन जागरण व क्रान्ति के लिए वाल्टेयर प्रयत्नशील था और अपने लेखों में वह इसी प्रकार के विचारों का प्रकटीकरण भी कर रहा था। नवयुवकों के अतिरिक्त अन्य कुछ विद्यार्थी भी वहाँ एकत्रित हो गए और आग्रह करने लगे कि वाल्टेयर अपने कुछ विचार रखे।

उस उत्साही लेखक ने अपना भाषण आरम्भ किया—मित्रो, स्वतन्त्रता रक्त माँगती है, शरीर का गरम, उबलता हुआ और लाल रक्त। रक्त देखकर ही स्वतन्त्रता प्राप्त होती है और बलिदान से ही स्वतंत्रता की रक्षा होती है।

उपस्थित सभी नवयुवक वाल्टेयर का जयनाद करते हुए नारे लगाने लगे। वे बोले—हम स्वतंत्रता के लिए अपना रक्त चढ़ा देंगे।

वाल्टेयर ने उन नवयुवकों की तरफ देखा जो गाल बजा रहे थे। वह व्यावहारिक था। उसे कोरे आदर्शवाद तथा नारेबाजी से चिढ़ थी। क्रोध में काँपते हुए उसने नवयुवकों को ललकारा।

—चुप रहो, तुम लोगों से क्रान्ति नहीं हो सकती।

—क्यों ? क्यों नहीं हो सकती क्रान्ति ? हम क्रान्ति करेंगे और रक्त अर्पण करेंगे। नवयुवक एक साथ बोले।

वाल्टेयर ने ऊँचे स्वर में कहा—अपने पीले, सूखे और उतरे चेहरे देखें हैं कभी ? रक्त अर्पण करोगे, पर रक्त है कहाँ ? शरीर में जान नहीं, साँसों में गति नहीं, चेहरे पर रौनक नहीं और बातें करते हो क्रान्ति की ! अभी-अभी मैंने कहा है स्वतन्त्रता और क्रांति रक्त माँगती है। तुम्हारे पास रक्त नहीं है, इसलिए तुम्हें स्वतन्त्रता की प्राप्ति नहीं हो सकती।

सभी नवयुवकों ने एक दूसरे का चेहरा देखा और अनुभव किया कि जो कुछ कहा गया है, सत्य है।

वाल्टेयर ने फिर कहा—जाओ, नारेबाजी से काम नहीं चलेगा, क्रान्ति पैदा करने से पहले अपने शरीर में लाल रक्त पैदा करो।

नवयुवक उस समय तो चले गए, किन्तु शीघ्र ही फ्रांस की क्रान्ति का सूत्रपात हुआ।

('प्रेरणा-दीप' से)

एक अपील

रामकृष्ण मठ
पो०-बेलुड़ मठ, जिला-हावड़ा
(प० बंगाल) ७११ २०२

जैसा कि आप में से अधिकांश लोग जानते हैं कि विश्वव्यापी रामकृष्ण भावधारा के संस्थापकों की पवित्र स्मृतियों के संरक्षणार्थ बेलुड़ मठ में एक संग्रहालय की स्थापना की गयी है, जिसका उद्घाटन १३ मई, १९९४ ई० को संघाध्यक्ष श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्दजी के हाथों सम्पन्न हुआ था।

श्रीरामकृष्ण, माँ सारदादेवी, स्वामी विवेकानन्द तथा श्रीरामकृष्ण के अन्य शिष्यों द्वारा उपयोग में लाये गये वस्त्र, पादुकाएँ तथा अन्य वस्तुएँ, उनके द्वारा लिखित पत्र और उनके द्वारा पढ़ी गयी पुस्तकों आदि को संग्रहालय में प्रदर्शित किया गया है। संग्रहालय में संलग्न अत्याधुनिक पुराभिलेखागार में उपर्युक्त वस्तुओं को आधुनिकतम तकनीक की सहायता से संरक्षित किया जाता है। हमें आपको यह भी सूचित करते हुए हर्ष हो रहा है कि विगत ४ फरवरी, १९९६ को पूज्य संघाध्यक्ष महाराज ने एक नयी तकनीकी दृष्टि से नियोजित, विशाल संग्रहालय तथा पुराभिलेखागार भवन की आधारशिला रखी।

वैसे अनेक व्यक्ति तथा संस्थाएँ अपने पास पड़ी ऐसी वस्तुएँ हमें दे रहे हैं, तथापि हम एक बार पुनः अपने भक्तों, संस्थाओं तथा जनसाधारण से यह अपील करते हैं कि वे अपने पास पड़ी इस तरह की किसी भी स्मरणीय वस्तु को बेलुड़ मठ के ट्रस्टियों अथवा अपने निकट स्थित हमारे किसी भी शाखाकेन्द्र को सौंप दे। हम एक बार पुनः दुहराते हैं कि यदि ये वस्तुएं वैज्ञानिक पद्धति से संरक्षित नहीं की गयीं, तो वे समय के आघात को नहीं झेल सकेंगी और सदा के लिए दुनिया से विलुप्त हो जायेंगी। हम आपके हार्दिक सहयोग की अपेक्षा करते हैं और हम इसके लिए आपका चिर आभारी रहेंगे।

पुराभिलेखागार के कार्य, प्रस्तावित भवन का मॉडल तथा प्रदर्शित वस्तुओं के नमूनों के आधार पर बनायी गयी १५ मिनट का एक वीडियो कैसेट बिक्रय के लिए उपलब्ध है जिसे रामकृष्ण संग्रहालय, बेलुड़ मठ और हमारे कुछ भारतीय तथा विदेश में स्थित केन्द्रों से प्राप्त किया जा सकता है।

१७-६-१९९६

स्वामी आत्मस्थानन्द
महासचिव

संसार में जब आया है तो एक स्मृति छोड़कर जा, वरना पेड़-पत्थर भी तो पैदा तथा नष्ट होते रहते हैं।

—स्वामी विवेकानन्द

जीवन की समस्त लयों के अनुकूल

पीयरलेस

दि पीयरलेस जेनरल फाइनैन्स एण्ड इन्व्हेस्टमेन्ट कं० लिमिटेड
पीयरलेस भवन
३, एसप्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता—७०० ०६९

भारत की वृहत्तम नॉन-बैंकिंग बचत कम्पनी

डाक पंजीयित संख्या—मी० एन० पी०—१८-८३

विश्ववन्द्य स्वामी विवेकानन्दजी की बहुप्रतीक्षित बृहत् जीवनी

युगनायक

विवेकानन्द

तीन खण्डों में

स्वामी गम्भीरानन्दजी द्वारा लिखित
स्वामी विवेकानन्दजी की यह मूल बंगला जीवनी
उनका अत्यन्त प्रामाणिक और अन्तर्दृष्टिसम्पन्न
जीवन-चरित मानी जाती है। सबदूर समादृत यह ग्रन्थ अब
हिन्दी-भाषी पाठकों को उपलब्ध हुआ है। हिन्दी में
स्वामी विवेकानन्दजी की बृहत्, प्रमाणभूत जीवनी का
अभाव था; जिसकी पूर्ति इस प्रकाशन से अब
हो गई है।

हर खण्ड करीब डमाई ४०० पृष्ठों का है।
हर खण्ड का मूल्य रु० ५०/- तीन खण्डों का एकत्रित मूल्य रु० १२०/-

प्रकाशक :

रामकृष्ण मठ

(प्रकाशन विभाग), धन्तोली, नागपुर—४४००१२

श्रीमती गंगा देवी, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित एवं
शिवशक्ति प्रिन्टर्स, मैदपुर, पटना-४ में मुद्रित।